से ही कुन्दकुन्द ने ग्रहण किये हैं।[१५८] यह मान्यता युक्तिसंगत नहीं है। यदि कुन्दकुन्द ने तत्त्वार्थसूत्र से '**सद् द्रव्यलक्षणम्**' सूत्र ग्रहण किया होता, तो उसे श्वेताम्बरमान्य सूत्रपाठ में भी होना चाहिए था। किन्तु नहीं है, इससे सिद्ध है कि वह दिगम्बरसूत्रपाठ में कुन्दकुन्द के **पञ्चास्तिकाय** से ही आया है। और जब वह पंचास्तिकाय से आया है, तब उसके साथवाले सूत्र भी पंचास्तिकाय से ही आये हैं, यह स्वतः सिद्ध होता है, क्योंकि उनका **पंचास्तिकाय** की गाथा से जो घनिष्ठ साम्य है, वह उपर्युक्त **स्थानांग** और **उत्तराध्ययन** के सूत्रों के साथ नहीं है। इसी प्रकार कुन्दकुन्द ने **समयसार** (गा. १०९) में बन्ध के चार हेतु बतलाये हैं—मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग, जबकि **तत्त्वार्थसूत्र** में प्रमाद को भी बन्ध का हेतु बतलाया गया है।[१५९] यदि कुन्दकुन्द ने तत्त्वार्थसूत्र का अनुकरण किया होता, तो वे भी बन्ध के पाँच ही हेतु बतलाते, चार नहीं। तथा कुन्दकुन्द तत्त्वार्थसूत्रकार से पूर्व हुए हैं, पश्चात् नहीं, यह पूर्व (अध्याय १०/प्र. १) में सिद्ध किया जा चुका है।

२०

तत्त्वार्थसूत्र — **कायवाङ् मनःकर्म योगः।** ६/१।

पंचास्तिकाय — **जोगो मणवयणकायसंभूदो।** १४८।

व्याख्याप्रज्ञ. — **तिविहे जोए पण्णत्ते, तं जहा—मणजोए, वइजोए, कायजोए।** १६/१/५६४।

यहाँ भी **तत्त्वार्थसूत्र** और **पंचास्तिकाय** के वचनों में रचनात्मक घनिष्ठता है।

२१

तत्त्वार्थसूत्र — **शुभः पुण्यस्याशुभः पापस्य।** ६/३।

पंचास्तिकाय — **सुहपरिणामो पुण्णं असुहो पावं---।** १३२।

उत्तरा.सूत्र — **पुण्णं पावासवो तहा।** २८/१४।

इस तत्त्वार्थगत सूत्र का भी शब्दसाम्य **पंचास्तिकाय** की ही गाथा के साथ है।

२२

तत्त्वार्थसूत्र (६/२४) में तीर्थंकरप्रकृति के बन्धहेतु सोलह बतलाये गये हैं और दिगम्बर-ग्रन्थ **षट्खण्डागम** (पु.८/३/४१/पृ. ७९) में भी सोलह ही निर्दिष्ट हैं, जब

१५८. जैनधर्म का यापनीय सम्प्रदाय / पृ. २४७।

१५९. "मिथ्यादर्शनाविरतिप्रमादकषाययोगा बन्धहेतवः।" तत्त्वार्थसूत्र ८/१।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

कि श्वेताम्बर-आगम **ज्ञातृधर्मकथाङ्ग** (अध्याय ८) में बीस हेतुओं का वर्णन है। तत्त्वार्थसूत्र और षट्खण्डागम में वर्णित इन हेतुओं में नामसाम्य और क्रमसाम्य भी ज्ञातृधर्मकथांग में वर्णित हेतुओं से अधिक हैं।

२३

तत्त्वार्थसूत्र — **हिंसाऽनृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतम्।** ७/१।

चारित्तपाहुड — **हिंसाविरइ अहिंसा असच्चविरई अदत्तविरई य।**
तुरियं अबंभविरई पंचम संगम्मि विरई य॥ २९॥

स्थानांग — **पंच महव्वया पण्णत्ता, तं जहा-सव्वाओ पाणातिवाया ओवेरमणं, सव्वाओ मुसावायाओ वेरमणं, जाव सव्वाओ परिग्गहाओ वेरमणं॥** ५/१/३८९।

यहाँ पाँचों पापों का क्रमशः उल्लेख और उनके साथ **विरति** शब्द का प्रयोग **तत्त्वार्थ** के सूत्र और **चारित्तपाहुड** की गाथा में ही हुआ है, **स्थानांग** के सूत्र में नहीं।

२४

तत्त्वार्थसूत्र — **वाङ्मनोगुप्तीर्यादाननिक्षेपणसमित्यालोकितपानभोजनानि पञ्च।** ७/४।

चारित्तपाहुड — **वयगुत्ती मणगुत्ती इरियासमिदी सुदाणणिक्खेवो।**
अवलोयभोयणाएऽहिंसाए भावणा होंति॥ ३१॥

समवायांग — **इरियासमिई मणगुत्ती वयगुत्ती आलोयभायणभोयणं आदाण-भंडमत्तनिक्खेवणासमिई।** २५।

यहाँ **तत्त्वार्थ** के सूत्र का **चारित्तपाहुड** की गाथा के साथ **समवायांग** के सूत्र की अपेक्षा शब्दसाम्य और क्रमसाम्य अधिक है। इतना ही नहीं, समवायांग के सूत्र में जो श्वेताम्बरमत-परक भाजन और भाण्ड का उल्लेख है, वह **तत्त्वार्थ** के सूत्र में नहीं है।

२५

तत्त्वार्थसूत्र — **शून्यागारविमोचितावासपरोपरोधाकरणभैक्षशुद्धिसधर्माविसं-वादाः पञ्च।** ७/६।

चारित्तपाहुड — **सुण्णायारणिवासो विमोचितावास जं परोधं च।**
एसणसुद्धिसउत्तं साहम्मी संविसंवादो॥ ३३॥

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

समवायांग — **उग्गहअणुण्णवणया उग्गहसीमंजाणणया सयमेव उग्गहं अणुगिण्हणया साहम्मिय उग्गहं अणुण्णविय परिभुंजणया साहारणपत्तपाणं अणुण्णविय पडिभुंजणया।** २५।

यहाँ **तत्त्वार्थ** का सूत्र **चारित्तपाहुड** के सूत्र की हूबहू छाया है, जब कि **समवायांग** के सूत्र का कोई भी शब्द उससे मिलता-जुलता नहीं है।

२६

तत्त्वार्थसूत्र — **मनोज्ञामनोज्ञेन्द्रियविषयरागद्वेषवर्जनानि पञ्च।** (७/८)।

चारित्तपाहुड — **अपरिग्गहसमणुण्णेसु सद्दपरिसरूवगंधेसु।**
रायद्दोसाईणं परिहारो भावणा होंति॥ ३५॥

चारित्तपाहुड — **अमणुण्णे य मणुण्णे सजीवदव्वे अजीवदव्वे य।**
ण करेइ रायदोसे पंचिंदियसंवरो भणिओ॥ २८॥

समवायांग — **सोइंदियरागोवरई चक्खुंदियरागोवरई घाणिंदियरागोवरई जिब्भिंदियरागोवरई फासिंदियरागोवरई।** समय २५।

यहाँ **समवायांग** के सूत्र का एक भी शब्द **तत्त्वार्थ** के सूत्र से सादृश्य नहीं रखता, न ही उसके साथ रचनात्मक समानता है, जब कि **चारित्तपाहुड** की गाथाओं से शाब्दिक साम्य भी है और रचनात्मक भी।

२७

तत्त्वार्थसूत्र — **मूर्च्छा परिग्रहः।** ७/१७।

प्रवचनसार — **मुच्छा परिग्गहो**---। ३/१७.२। (जयसेननिर्दिष्ट गाथा)।

दशवैका.सूत्र — **मुच्छा परिग्गहो**---। ६/२१।

यहाँ तीनों में साम्य है, तथापि पूर्वोक्त उदाहरणों में सूत्रकार ने कुन्दकुन्द का ही अनुकरण किया है, इससे सिद्ध होता है कि यहाँ भी उन्हीं का अनुकरण किया गया है।

२८

तत्त्वार्थसूत्र — **निःशल्यो व्रती।** ७/१८।

नियमसार — **मोत्तूण सल्लभावं णिस्सले जो दु साहु परिणमदि।** ८७।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

आव.सूत्र — **पडिक्कमामि तिहिं सल्लेहिं—मायासल्लेणं नियाणसल्लेणं मिच्छादंसणसल्लेणं।** ४ / ७।

यहाँ **तत्त्वार्थसूत्र** और **नियमसार** के उद्धरणों में **निःशल्य** शब्द का साम्य है। यह शब्द **आवश्यकसूत्र** में अदृश्य है।

२९

तत्त्वार्थसूत्र — **मिथ्यादर्शनाविरतिप्रमादकषाययोगा बन्धहेतवः।** ८ /१।

समयसार — **सामण्णपच्चया खलु चउरो भण्णंति बंधकत्तारो।**
मिच्छत्तं अविरमणं कसायजोगा य बोद्धव्वा॥ १०९॥

समवायांग — **पंच आसवदारा पण्णत्ता, तं जहा—मिच्छत्तं अविरई पमायाकसाया जोगा।** समय ५।

यहाँ **समवायांग** में मिथ्यात्वादि को आस्रवद्वार कहा गया है, जो अर्थ को साक्षात् संकेतित करता है, फिर भी तत्त्वार्थसूत्रकार ने उसे ग्रहण नहीं किया। **समयसार** का **बन्धकर्त्तारः** पद **आस्रवहेतु** अर्थ का परम्परया द्योतक है, फिर भी **तत्त्वार्थ** के कर्त्ता ने उसका ही अनुकरण किया है।

३०

तत्त्वार्थसूत्र — **सकषायत्वाज्जीवः कर्मणो योग्यान् पुद्गलानादत्ते स बन्धः।** ८/२।

प्रवचनसार — **सपदेसो सो अप्पा कसायदो मोहरागदोसेहिं।**
कम्मरजेहिं सिलिट्ठो बंधो त्ति परूविदो समये॥ २/९६॥

समवायांग — **जोगबंधे कसायबंधे।''** समय ५।

स्थानांग — **दोहिं ठाणेहिं पापकम्मा बंधंति, तं जहा—रागेण य दोसेण य।** २/२।

यहाँ **तत्त्वार्थ** के सूत्र का केवल **प्रवचनसार** की गाथा से ही शब्दगत, अर्थगत और बन्धप्रक्रिया-निरूपणरूप साम्य है, अन्य दो उद्धरणों के साथ नहीं है।

३१

तत्त्वार्थसूत्र — **आस्रवनिरोधः संवरः।** ९ / १।

समयसार — **आसवणिरोहो (संवरः)।** १६६।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

उत्तरा. सूत्र — **निरुद्धासवे संवरो।** २९/११।

यहाँ तीनों में अर्थगत साम्य होते हुए भी शाब्दिक साम्य केवल पूर्वोक्त दो में ही है।

३२

तत्त्वार्थसूत्र — **ईर्याभाषैषणादाननिक्षेपोत्सर्गाः समितयः।** ९/५।

चारित्तपाहुड — **इरिया भासा एसण जा सा आदाण चेव णिक्खेवो।**
संजमसोहिणिमित्ते खंति जिणा पंच समिदीओ॥ ३६॥

समवायांग — **पंच समिईयो पण्णत्ता, तं जहा—ईरियासमिई भासासमिई एसणासमिई आयाणभंडमत्तनिक्खेवणासमिई उच्चारपासवणखेलसिंघाणजल्ल-परिट्ठावणियासमिई।** समवाय ५।

यहाँ **तत्त्वार्थ** के सूत्र में वर्णित समितियों के नामों का शतप्रतिशत साम्य **चारित्तपाहुड** में वर्णित नामों के साथ है। **समवायांग** में भाण्ड और मात्रक (श्वेताम्बर-साधुओं के पात्रविशेष) के आदान-निक्षेपण का उल्लेख है, उसकी छाया भी **तत्त्वार्थ** के सूत्र में दृष्टिगोचर नहीं होती। यह इस बात का अखण्ड्य प्रमाण है कि तत्त्वार्थसूत्रकार ने उक्त सूत्र की रचना में कुन्दकुन्द का ही अनुकरण किया है।

३३

तत्त्वार्थसूत्र — **उत्तमक्षमामार्दवार्जवशौचसत्यसंयमतपस्त्यागाकिञ्चन्यब्रह्मचर्याणि धर्मः।** ९/६।

बारस अणु. — **उत्तमखममद्दवज्जवसच्चसउच्चं च संजमं चेव।**
तवचागमकिंचण्हं बम्हा इदि दसविहं होदि॥ ७०॥

समवायांग — **दसविहे समणधम्मे पण्णत्ते, तं जहा—खंती मुत्ती अज्जवे मद्दवे लाघवे सच्चे संजमे तवे चियाए बंभचेरवासे।**[१६०] सम./१०।

यहाँ तत्त्वार्थसूत्रकार ने **बारस-अणुवेक्खा** का शब्दशः अनुकरण किया है और शब्दक्रम भी ज्यों का त्यों है, किन्तु **समवायांग** के साथ न तो पूर्णतः शब्दसाम्य है, न ही क्रमसाम्य।

३४

तत्त्वार्थसूत्र — **अनित्याशरणसंसारैकत्वान्यत्वाशुच्यास्रवसंवरनिर्जरालोकबोधिदुर्लभधर्मस्वाख्यास्तत्त्वानुचिन्तनमनुप्रेक्षाः।** ९/७।

---

१६०. खंती = क्षान्ति, मुत्ती = मुक्ति (आकिञ्चन्य), लाघवे = शौच, चियाए = त्याग।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

बारस अणु. — **अद्धुवमसरणमेगत्तमण्णसंसारलोगमसुचित्तं।**
आसवसंवरणिज्जरधम्मं बोहिं च चिंतेज्जो॥ २॥

भग.-आरा. — **अद्धुवमसरणमेगत्तमण्ण-संसार-लोयमसुइत्तं।**
आसवसंवरणिज्जरधम्मं बोधिं च चिंतिज्ज॥ १७१०॥

स्थानांग — **अणिच्चाणुप्पेहा असरणाणुप्पेहा एगत्ताणुप्पेहा, संसाराणुप्पेहा।**
अवायाणुप्पेहा ४/१/२४७, **णिज्जरे** १/१६, **लोगे** १/५।

सूत्रकृतांग — **अण्णत्ते, असुइअणुप्पेहा।** २/१/१३। **बोहिदुल्लहे।** १/१।

उत्तरा.सूत्र — **संवरे।** २३/७१। **धम्मे।** १०/१८[१६१]

यहाँ हम देखते हैं कि श्वेताम्बर-आगमों में कहीं भी एक साथ बारह अनुप्रेक्षाओं का वर्णन नहीं है। कहीं पाँच का वर्णन है, कहीं दो का, कहीं एक का। यद्यपि इस प्रकार बारह अनुप्रेक्षाओं की संख्या पूरी हो जाती है, तथापि जैसे तत्त्वार्थसूत्र में एक साथ वर्णित हैं, वैसे एक साथ वर्णित नहीं है, जब कि बारस-अणुवेक्खा और भगवती-आराधना में एक साथ वर्णित हैं। इसके अलावा श्वेताम्बर-आगमों में आस्रवानुप्रेक्षा का नाम नहीं है, उसके स्थान पर **अपायानुप्रेक्षा** का नाम है। इस तरह नाम और रचना की दृष्टि से तत्त्वार्थ के अनुप्रेक्षासूत्र की जितनी निकटता **बारस-अणुवेक्खा** और **भगवती-आराधना** के साथ है, उतनी श्वेताम्बर-आगमों के साथ नहीं है।

डॉ० सागरमल जी लिखते हैं—"**प्रकीर्णकों** के अन्तर्गत **मरणविभक्ति** एक प्राचीन प्रकीर्णक है, इसकी ५७० से लेकर ६४० तक की ७१ गाथाओं में बारह भावनाओं का विस्तृत विवेचन उपलब्ध होता है। मरणविभक्ति की भावनासम्बन्धी इन ७१ गाथाओं में भी अनेक भगवती-आराधना और मूलाचार में उपलब्ध होती हैं। अतः तत्त्वार्थभाष्य, भगवती-आराधना और मूलाचार में, जो साम्य परिलक्षित होता है, वह इन तीनों के कर्त्ताओं द्वारा आगमिक ग्रन्थों के अनुसरण के कारण ही है। भगवती-आराधना और मूलाचार यापनीयग्रन्थ हैं और यापनीय आगम मानते थे। मरणविभक्ति तत्त्वार्थभाष्य से प्राचीन है। वस्तुतः यापनीय (ग्रन्थों) और तत्त्वार्थभाष्य में जो समरूपता है, उसका कारण यह है कि उन दोनों का मूल स्रोत एक ही है।" (जै.ध.या.स./ पृ. ३५०-३५८)। डॉक्टर साहब का यह कथन निम्नलिखित कारणों से समीचीन नहीं हैं—

---

१६१. तत्त्वार्थसूत्र-जैनागम-समन्वय / पृ. २०२-२०३।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

१. यद्यपि पाँचवीं शताब्दी ई० में रचित **नन्दीसूत्र** में **मरणविभक्ति** नामक प्रकीर्णक का उल्लेख है, तथापि उसमें **अनुयोगद्वारसूत्र** का भी निर्देश है। और डॉक्टर साहब ने स्वयं लिखा है कि "अनुयोगद्वारसूत्र निश्चित ही तत्त्वार्थसूत्र एवं उसके भाष्य से किञ्चित् परवर्ती है।" (जै.ध.या.स./पृ. ३२२)। इसलिए 'मरणविभक्ति' नामक ग्रन्थ केवल इस आधार पर तत्त्वार्थसूत्र से पूर्ववर्ती नहीं हो जाता कि उसका उल्लेख नन्दीसूत्र में है।

२. दूसरी बात यह है कि नन्दीसूत्र में २९ **उत्कालिक** (दिन और रात्रि के दूसरे और तीसरे प्रहर में भी पढ़े जाने योग्य) सूत्रों का वर्णन किया गया है—१.दशवैकालिक, २.कल्पाकल्प, ३.लघुकल्प, ४.महाकल्प, ५.औपपातिक, ६.राजप्रश्नीय, ७.जीवाभिगम, ८.प्रज्ञापना, ९.महाप्रज्ञापना, १०.प्रमादाप्रमाद, ११.नन्दी, १२.अनुयोगद्वार, १३.देवेन्द्रस्तव, १४.तंदुलवैचारिक, १५.चन्द्रवेध्यक, १६.सूर्यप्रज्ञप्ति, १७.पौरुषीमण्डल, १८.मण्डप्रवेश, १९.विद्याचरणविनिश्चय, २०.गणिविद्या, २१.ध्यानविभक्ति, २२.मरणविभक्ति, २३.आत्मविशुद्धि, २४.वीतरागश्रुत, २५.सल्लेखनाश्रुत, २६.विहारकल्प, २७.आतुरप्रत्याख्यान, २८.महाप्रत्याख्यान और २९.चरणाविधि। (नन्दीसूत्र/पृ. ४००)।

इनमें से दशवैकालिक, औपपातिक, राजप्रश्नीय, जीवाभिगम, प्रज्ञापना, नन्दी, अनुयोगद्वार, और सूर्यप्रज्ञप्ति, मात्र इन आठ को नन्दीसूत्र के विवेचक मुनि श्री पारसकुमार जी ने विद्यमान बतलाया है, शेष २१ के बारे में कहा है कि उनका विच्छेद हो गया है।[१६२] इस प्रकार नन्दीसूत्र में उल्लिखित **मरणविभक्ति** का अस्तित्व ही नहीं है। जो उपलब्ध है, उसकी रचना तत्त्वार्थसूत्र और भगवती-आराधना के बाद हुई है। इसलिए उसमें जो बारह अनुप्रेक्षाओं का विस्तृत वर्णन है, वह तत्त्वार्थसूत्र और भगवती-आराधना के आधार पर ही किया गया है। अतः डॉक्टर साहब का यह कथन उचित है कि मरणविभक्ति की भावना-सम्बन्धी गाथाओं में से अनेक भगवती-आराधना और मूलाचार में मिलती हैं। किन्तु उनका यह कथन सही नहीं है कि भगवती-आराधना और मूलाचार यापनीयपरम्परा के ग्रन्थ हैं। पूर्व में सप्रमाण सिद्ध किया जा चुका है कि ये दोनों ग्रन्थ शतप्रतिशत दिगम्बराचार्यों की कृतियाँ हैं। निष्कर्ष यह कि **तत्त्वार्थ** का अनुप्रेक्षासूत्र **बारस-अणुवेक्खा**, **भगवती-आराधना** और **मूलाचार** इन दिगम्बरग्रन्थों से घनिष्ठ साम्य रखता है, श्वेताम्बरग्रन्थों से उसकी समानता बहुत अल्प है।

---

१६२. नन्दीसूत्र/पृ. ४०२/अ.भा.साधुमार्गी जैन संस्कृतिरक्षक संघ सैलाना (म.प्र.) सन् १९८४ ई०।

३५

१. तत्त्वार्थसूत्रगत बाईस परीषहों में अदर्शनपरीषह है—"**प्रज्ञाज्ञानादर्शनानि**" ९/९।

२. दिगम्बरग्रन्थ मूलाचार में वर्णित बाईस परीषहों में भी अदर्शनपरीषह का ही उल्लेख है—"**तह चेव पण्णपरिसह अण्णाणमदंसणं खमणं।**" २५५।

३. किन्तु श्वेताम्बर-आगम **समवायांग** में उसके स्थान में **दर्शनपरीषह** है—"**अण्णाणपरीसहे दंसणपरीसहे।**" समवाय २२।

४. इसके अतिरिक्त **समवायांग** (समवाय २२) के **अचेलपरीषह** के स्थान पर **तत्त्वार्थसूत्र** में **नाग्न्यपरीषह** शब्द है, जो दिगम्बरपरम्परा के सर्वथा वस्त्र-रहितत्व को स्पष्टतः सूचित करता है।'

इन उदाहरणों से सिद्ध है कि **तत्त्वार्थ** का **परीषहसूत्र** दिगम्बरपरम्परा की ओर झुका हुआ है।

३६

१. **तत्त्वार्थ** के बाह्यतपसूत्र (९/१९) में **विविक्तशय्यासन** नाम का तप है।

२. दिगम्बरग्रन्थ **भगवती-आराधना**[१६३] तथा **मूलाचार**[१६४] में भी **विविक्तशय्यासन** ही नाम है।

३. किन्तु श्वेताम्बर-आगम **व्याख्याप्रज्ञप्ति** (२५/७/२०८) में उसके स्थान पर **पडिसंलीणया** (प्रतिसंलीनता) नाम का तप है, यद्यपि उसका अर्थ विविक्त-शय्यासन ही बतलाया गया है।

इस तरह **तत्त्वार्थ** का **बाह्यतपसूत्र** भी दिगम्बरग्रन्थों से निकटता दर्शाता है।

३७

तत्त्वार्थसूत्र — **ज्ञानदर्शनचारित्रोपचाराः।** ९/२३।

भावपाहुड — **विणयं पंचपयारं।** १०२।

दंसणपाहुड — **दंसणणाणचरित्ते तवविणये णिच्चकाल सुपसत्था।** २३।

---

१६३. कायकिलेसो सेज्जा य विवित्ता बाहिरतवो सो॥ २१०॥ भगवती-आराधना / पृ. २३६।

१६४. विवित्तसयणासणं छट्ठं॥ ३४६॥ मूलाचार / पृ. २८३।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

१. यद्यपि पाँचवीं शताब्दी ई० में रचित **नन्दीसूत्र** में **मरणविभक्ति** नामक प्रकीर्णक का उल्लेख है, तथापि उसमें **अनुयोगद्वारसूत्र** का भी निर्देश है। और डॉक्टर साहब ने स्वयं लिखा है कि "अनुयोगद्वारसूत्र निश्चित ही तत्त्वार्थसूत्र एवं उसके भाष्य से किञ्चित् परवर्ती है।" (जै.ध.या.स./पृ. ३२२)। इसलिए 'मरणविभक्ति' नामक ग्रन्थ केवल इस आधार पर तत्त्वार्थसूत्र से पूर्ववर्ती नहीं हो जाता कि उसका उल्लेख नन्दीसूत्र में है।

२. दूसरी बात यह है कि नन्दीसूत्र में २९ **उत्कालिक** (दिन और रात्रि के दूसरे और तीसरे प्रहर में भी पढ़े जाने योग्य) सूत्रों का वर्णन किया गया है—१.दशवैकालिक, २.कल्पाकल्प, ३.लघुकल्प, ४.महाकल्प, ५.औपपातिक, ६.राजप्रश्नीय, ७.जीवाभिगम, ८.प्रज्ञापना, ९.महाप्रज्ञापना, १०.प्रमादाप्रमाद, ११.नन्दी, १२.अनुयोगद्वार, १३.देवेन्द्रस्तव, १४.तंदुलवैचारिक, १५.चन्द्रवेध्यक, १६.सूर्यप्रज्ञप्ति, १७.पौरुषीमण्डल, १८.मण्डप्रवेश, १९.विद्याचरणविनिश्चय, २०.गणिविद्या, २१.ध्यानविभक्ति, २२.मरणविभक्ति, २३.आत्मविशुद्धि, २४.वीतरागश्रुत, २५.सल्लेखनाश्रुत, २६.विहारकल्प, २७.आतुरप्रत्याख्यान, २८.महाप्रत्याख्यान और २९.चरणाविधि। (नन्दीसूत्र/पृ. ४००)।

इनमें से दशवैकालिक, औपपातिक, राजप्रश्नीय, जीवाभिगम, प्रज्ञापना, नन्दी, अनुयोगद्वार, और सूर्यप्रज्ञप्ति, मात्र इन आठ को नन्दीसूत्र के विवेचक मुनि श्री पारसकुमार जी ने विद्यमान बतलाया है, शेष २१ के बारे में कहा है कि उनका विच्छेद हो गया है।[१६२] इस प्रकार नन्दीसूत्र में उल्लिखित **मरणविभक्ति** का अस्तित्व ही नहीं है। जो उपलब्ध है, उसकी रचना तत्त्वार्थसूत्र और भगवती-आराधना के बाद हुई है। इसलिए उसमें जो बारह अनुप्रेक्षाओं का विस्तृत वर्णन है, वह तत्त्वार्थसूत्र और भगवती-आराधना के आधार पर ही किया गया है। अतः डॉक्टर साहब का यह कथन उचित है कि मरणविभक्ति की भावना-सम्बन्धी गाथाओं में से अनेक भगवती-आराधना और मूलाचार में मिलती हैं। किन्तु उनका यह कथन सही नहीं है कि भगवती-आराधना और मूलाचार यापनीयपरम्परा के ग्रन्थ हैं। पूर्व में सप्रमाण सिद्ध किया जा चुका है कि ये दोनों ग्रन्थ शतप्रतिशत दिगम्बराचार्यों की कृतियाँ हैं। निष्कर्ष यह कि **तत्त्वार्थ** का अनुप्रेक्षासूत्र **बारस-अणुवेक्खा**, **भगवती-आराधना** और **मूलाचार** इन दिगम्बरग्रन्थों से घनिष्ठ साम्य रखता है, श्वेताम्बरग्रन्थों से उसकी समानता बहुत अल्प है।

---

१६२. नन्दीसूत्र/पृ. ४०२/अ.भा.साधुमार्गी जैन संस्कृतिरक्षक संघ सैलाना (म.प्र.) सन् १९८४ ई०।

३५

१. तत्त्वार्थसूत्रगत बाईस परीषहों में अदर्शनपरीषह है—"**प्रज्ञाज्ञानादर्शनानि**" ९/९।

२. दिगम्बरग्रन्थ मूलाचार में वर्णित बाईस परीषहों में भी अदर्शनपरीषह का ही उल्लेख है—"**तह चेव पण्णपरिसह अण्णाणमदंसणं खमणं।**" २५५।

३. किन्तु श्वेताम्बर-आगम **समवायांग** में उसके स्थान में **दर्शनपरीषह** है—"**अण्णाणपरीसहे दंसणपरीसहे।**" समवाय २२।

४. इसके अतिरिक्त **समवायांग** (समवाय २२) के **अचेलपरीषह** के स्थान पर **तत्त्वार्थसूत्र** में **नाग्न्यपरीषह** शब्द है, जो दिगम्बरपरम्परा के सर्वथा वस्त्र-रहितत्व को स्पष्टतः सूचित करता है।'

इन उदाहरणों से सिद्ध है कि **तत्त्वार्थ** का **परीषहसूत्र** दिगम्बरपरम्परा की ओर झुका हुआ है।

३६

१. **तत्त्वार्थ** के बाह्यतपसूत्र (९/१९) में **विविक्तशय्यासन** नाम का तप है।

२. दिगम्बरग्रन्थ **भगवती-आराधना**[१६३] तथा **मूलाचार**[१६४] में भी **विविक्तशय्यासन** ही नाम है।

३. किन्तु श्वेताम्बर-आगम **व्याख्याप्रज्ञप्ति** (२५/७/२०८) में उसके स्थान पर **पडिसंलीणया** (प्रतिसंलीनता) नाम का तप है, यद्यपि उसका अर्थ विविक्त-शय्यासन ही बतलाया गया है।

इस तरह **तत्त्वार्थ** का **बाह्यतपसूत्र** भी दिगम्बरग्रन्थों से निकटता दर्शाता है।

३७

तत्त्वार्थसूत्र — **ज्ञानदर्शनचारित्रोपचाराः।** ९/२३।

भावपाहुड — **विणयं पंचपयारं।** १०२।

दंसणपाहुड — **दंसणणाणचरित्ते तवविणये णिच्चकाल सुपसत्था।** २३।

---

१६३. कायकिलेसो सेज्जा य विवित्ता बाहिरतवो सो॥ २१०॥ भगवती-आराधना/पृ. २३६।

१६४. विवित्तसयणासणं छट्ठं॥ ३४६॥ मूलाचार/पृ. २८३।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

व्याख्याप्रज्ञ. — **विणए सत्तविहे पण्णत्ते, तं जहा—णाणविणए दंसणविणए चरित्तविणए मणविणए वइविणए कायविणए लोगोवेयारविणए।** २५/७/८०२।

यहाँ **तत्त्वार्थसूत्र** और कुन्दकुन्द के **भावपाहुड** दोनों में विनय के पाँच प्रकार बतलाये गये हैं, जब कि श्वेताम्बर-**व्याख्याप्रज्ञप्ति** में सात प्रकार। अतः '**ज्ञानदर्शनचारित्रोपचाराः**' सूत्र भी दिगम्बरग्रन्थों के ही निकट है। पं० सुखलाल जी संघवी एवं डॉ० सागरमल जी के मानदंड के अनुसार **व्याख्याप्रज्ञप्ति** का यह सूत्र **तत्त्वार्थसूत्र, भावपाहुड** और **दंसणपाहुड** के उपर्युक्त सूत्र और गाथांशों में वर्णित अर्थ की अपेक्षा विकसित अर्थवाला भी है, जो अर्वाचीन होने का लक्षण है।

३८

तत्त्वार्थसूत्र — **सम्यग्दृष्टिश्रावकविरतानन्तवियोजकदर्शनमोहक्षपकोपशमकोपशान्तमोहक्षपकक्षीणमोहजिनाः क्रमशोऽसंख्येयगुणनिर्जराः।** ९/४५।

षट्खंडागम — **सम्मत्तुप्पत्ती वि य सावयविरदे अणंतकम्मंसे।**
दंसणमोहक्खवए कसायउवसामए य उवसंते॥ ७॥
खवए य खीणमोहे जिणे य णियमा भवे असंखेज्जा।
तव्विवरीदो कालो संखेज्जगुणाए य सेडीए॥ ८॥
पु. १२/४,२/पृ. ७८।

समवायांग — **कम्मविसोहिमग्गणं पडुच्च चउदस जीवट्ठाणा पण्णत्ता, तं जहा—मिच्छादिट्ठी सासायणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छदिट्ठि अविरयसम्मद्दिट्ठी विरयाविरए पमत्तसंजए अप्पमत्तसंजए निअट्टीबायरे अनिअट्टिबायरे सुहुमसंपराए उवसामए वा खवए वा उवसंतमोहे वा खीणमोहे सजोगीकेवली अजोगीकेवली।** समवाय १४।

तत्त्वार्थ के उपर्युक्त सूत्र एवं **षट्खण्डागम** की उक्त गाथाओं में गुणश्रेणिनिर्जरा के दस स्थानों का वर्णन किया गया है। उनमें नाम, क्रम और संख्या का शब्दशः साम्य है। उनके साथ श्वेताम्बर-आगम **समवायांग** का जो सूत्र उद्धृत किया गया है, उसे **तत्त्वार्थसूत्र-जैनागम-समन्वय** ग्रन्थ के श्वेताम्बर-लेखक **उपाध्याय मुनि श्री आत्माराम जी** ने तत्त्वार्थसूत्र के उपर्युक्त गुणश्रेणिनिर्जरास्थान-प्रतिपादक सूत्र का स्रोत बतलाया है। किन्तु वह गुणश्रेणिनिर्जरास्थानों का प्रतिपादक है ही नहीं। उसमें तो चौदह

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

गुणस्थानों के नाम वर्णित किये गये हैं। उदाहरणार्थ, उसमें मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि (सास्वादन सम्यग्दृष्टि) एवं सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानों का वर्णन है, इनमें गुणश्रेणि-निर्जरा होती ही नहीं है। तथा प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत (विरत) से अधिक गुणश्रेणिनिर्जरा अनन्तवियोजक के और अनन्तवियोजक से अधिक दर्शनमोहक्षपक के होती है, किन्तु इनका सूत्र में नाम ही नहीं है। अपरञ्च दर्शनमोहक्षपक से अधिक गुणश्रेणिनिर्जरा चारित्रमोह-उपशमक के, उससे अधिक उपशान्तमोह के, उससे भी अधिक क्षपक के, उससे भी अधिक क्षीणमोह के और उससे भी अधिक 'जिन' (सयोगि-केवली और अयोगिकेवली) के होती है, किन्तु इनके नाम इस क्रम से उपर्युक्त सूत्र में वर्णित नहीं हैं। इससे सिद्ध है कि वह गुणश्रेणिनिर्जरा के स्थानों का प्रतिपादक सूत्र नहीं है, अपितु केवल गुणस्थानों के नाम का वर्णन करनेवाला सूत्र है। उसमें ऐसा निर्देश भी किया गया है, यथा—"**कम्मविसोहिमग्गणं पडुच्च चउदस जीवट्ठाणा पण्णत्ता, तं जहा—मिच्छादिट्ठी**---।" अर्थात् कर्मों की विशुद्धि के मार्ग की अपेक्षा चौदह जीवस्थान (गुणस्थान) बतलाये गये हैं, जैसे-मिथ्यादृष्टि---। और डॉ० सागरमल जी ने तो इसे प्रक्षिप्त माना है। वे लिखते हैं—"---श्वेताम्बरमान्य समवायांग में १४ जीवठाण के रूप में १४ गुणस्थानों का निर्देश है, किन्तु अनेक आधारों पर यह सिद्ध होता है कि समवायांग में प्रथम शती से पाँचवी शती के बीच अनेक प्रक्षेप होते रहे हैं। अतः वलभीवाचना के समय ही जीवसमास का यह विषय उसमें संकलित किया होगा। अन्य प्राचीन स्तर के श्वेताम्बर-आगमों, जैसे—आचारांग, सूत्रकृतांग, उत्तराध्ययन, दशवैकालिक, भगवती और यहाँ तक कि प्रथम शताब्दी में रचित प्रज्ञापना और जीवाभिगम में भी गुणस्थान का अभाव है।" (जै.ध.या.स./पृ.२५१)।

इस कथन से यह बिलकुल स्पष्ट हो जाता है कि **तत्त्वार्थ** का उपर्युक्त सूत्र **षट्खण्डागम** के उक्त सूत्र पर ही आधारित है। श्वेताम्बरग्रन्थ **आचारांगनिर्युक्ति** में गुणश्रेणिनिर्जरा-स्थान-प्रतिपादक दो गाथाएँ उपलब्ध होती हैं, किन्तु उसका रचनाकाल ईसा की छठी शताब्दी है, अतः वह भी **तत्त्वार्थ** के उपर्युक्त सूत्र का आधार नहीं हो सकती। **समवायांग** की तरह **आचारांगनिर्युक्ति** में भी उक्त गाथाएँ **षट्खण्डागम** से ही पहुँची हैं। (देखिए, अध्याय १०/प्रकरण ५/शीर्षक ३.१.,३.२.,३.३.)।

उपर्युक्त उदाहरण इस बात के गवाह हैं कि **तत्त्वार्थसूत्र** के सूत्रों की शाब्दिक, आर्थिक और रचनात्मक दृष्टि से जितनी निकटता दिगम्बरग्रन्थों के साथ है, उतनी श्वेताम्बरग्रन्थों के साथ नहीं है। अतः दिगम्बरग्रन्थ षट्खण्डागम और कुन्दकुन्द के ग्रन्थ ही तत्त्वार्थसूत्र की रचना के प्रमुख आधार हैं। इनके अलावा भगवती-आराधना और मूलाचार जैसे प्राचीन दिगम्बरग्रन्थों से भी विषयवस्तु ग्रहण की गई है।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

३

गुणस्थानाश्रित निरूपण के आधार दिगम्बरग्रन्थ

तत्त्वार्थसूत्रकार ने **तत्त्वार्थ** के निम्नलिखित सूत्रों में यह वर्णित किया है कि किस गुणस्थानवाले जीव को कौन-कौन से परीषह और कौन-कौन से ध्यान होते हैं—

१. **सूक्ष्मसाम्परायछद्मस्थवीतरागयोश्चतुर्दश**। ९/१०।

२. **एकादश जिने**। ९/११।

३. **बादरसाम्पराये सर्वे**। ९/१२।

४. **तदविरतदेशविरतप्रमत्तसंयतानाम्**। ९/३४।

५. **हिंसानृतस्तेयविषयसंरक्षणेभ्यो रौद्रमविरतदेशविरतयोः**। ९/३५।

६. **परे केवलिनः**। ९/३८।

इस प्रकार का गुणस्थानाश्रित वर्णन किसी भी श्वेताम्बर-आगम में नहीं मिलता, जबकि षट्खण्डागम, कसायपाहुड, समयसार, भगवती-आराधना, मूलाचार आदि प्राचीन दिगम्बरग्रन्थ गुणस्थानाश्रित निरूपण से भरे पड़े हैं। इससे स्पष्ट है कि तत्त्वार्थसूत्रकार ने इन ग्रन्थों के आधार पर ही **तत्त्वार्थ** के उपर्युक्त सूत्रों में गुणस्थानानुसार परीषहों और चतुर्विध ध्यान के स्वामित्व का विभाजन किया है।

ये प्रचुर प्रमाण दिन के प्रकाश के समान स्पष्ट कर देते हैं कि तत्त्वार्थसूत्र की रचना दिगम्बरग्रन्थों के आधार पर हुई है, न कि श्वेताम्बरग्रन्थों के आधार पर, अतः तत्त्वार्थसूत्र शतप्रतिशत दिगम्बरग्रन्थ है।

✧✧✧

पंचम प्रकरण

तत्त्वार्थसूत्र के उत्तरभारतीय-सचेलाचेल-निर्ग्रन्थ सम्प्रदाय का ग्रन्थ न होने के प्रमाण

१

तत्त्वार्थसूत्र के उक्त सम्प्रदाय का ग्रन्थ होने की मान्यता

डॉ० सागरमल जी ने तत्त्वार्थसूत्र को दिगम्बर, श्वेताम्बर और यापनीय, इन तीनों में से किसी भी सम्प्रदाय का ग्रन्थ नहीं माना है। वे इसे एक स्वकल्पित उत्तरभारतीय-सचेलाचेल-निर्ग्रन्थ सम्प्रदाय का ग्रन्थ मानते हैं। उनका मान्यता है कि यह सम्प्रदाय भगवान् महावीर के उपदेशों का पालन करनेवाला मूल सम्प्रदाय था। यह अचेलमुक्ति, सचेलमुक्ति, स्त्रीमुक्ति, गृहस्थमुक्ति, परतीर्थिकमुक्ति, केवलिभुक्ति, भगवान् महावीर के गर्भपरिवर्तन और मल्लितीर्थंकर के स्त्री होने के मत को मानता था। (जै.ध.या.स./पृ.३५०)। उनके अनुसार इस सम्प्रदाय या परम्परा का अस्तित्व तीर्थंकर महावीर के काल से लेकर ईसा की पाँचवीं शती के पूर्व तक बना रहा। पाँचवीं शती ई० में इसके विभाजन से श्वेताम्बर और यापनीय संघों की उत्पत्ति हुई। यापनीयसंघ उपर्युक्त अचेलमुक्ति, सचेलमुक्ति आदि सभी मान्यताओं को स्वीकार करता था और श्वेताम्बरसंघ को केवल अचेलमुक्ति मान्य नहीं है, शेष सभी मान्यताएँ स्वीकार्य हैं। एकमात्र यही दोनों में फर्क था। दिगम्बरपरम्परा को डॉ० सागरमल जी विक्रम की छठी शती में आचार्य कुन्दकुन्द द्वारा दक्षिण भारत में प्रवर्तित मानते हैं। तत्त्वार्थसूत्र को उक्त स्व-कल्पित उत्तरभारतीय-सचेलाचेल-निर्ग्रन्थ-परम्परा का ग्रन्थ बतलाते हुए डॉ० सागरमल जी लिखते हैं—

"श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों परम्परा के विद्वानों ने इसे अपनी परम्परा में रचित सिद्ध करने हेतु अनेक लेखादि लिखे हैं। मैंने उन सभी लेखों को, जिन्हें दोनों परम्पराओं के परम्परागत विद्वानों एवं कुछ तटस्थ विदेशी विद्वानों ने लिखा, देखने का प्रयास किया और उन सबको देखने के पश्चात् मैं इस निर्णय पर पहुँचा हूँ कि तत्त्वार्थसूत्र उस युग की रचना है, जब जैनपरम्परा में अनेक प्रश्नों पर सैद्धान्तिक और व्यावहारिक मतभेद उभरकर सामने आने लगे थे और जैनसंघ विभिन्न गण, कुल और शाखाओं में विभक्त हो गया। किन्तु इन मतभेदों एवं गणभेदों के होते हुए भी तब तक जैनसंघ श्वेताम्बर, दिगम्बर और यापनीय जैसे विभागों में विभाजित नहीं हुआ था। मेरी दृष्टि में तत्त्वार्थसूत्र की रचना उत्तर भारत की उस निर्ग्रन्थपरम्परा में

हुई, जो उसकी रचना के पश्चात् एक दो शताब्दियों में ही सचेल-अचेल ऐसे दो भागों में स्पष्टरूप से विभक्त ही गई, जो क्रमशः श्वेताम्बर और यापनीय (बोटिक) के नाम से जानी जाने लगी। जहाँ तक दिगम्बरपरम्परा का प्रश्न है, उन्हें यह ग्रन्थ उत्तरभारत की अचेलपरम्परा, जिसे यापनीय कहा जाता है, से ही प्राप्त हुआ।'' (जै. ध.या.स./पृ.२३९-२४०)।

''मूर्धन्य विद्वान् पं० सुखलाल जी ने अपने तत्त्वार्थसूत्र की भूमिका में, पं० हीरालाल रसिकलाल कापड़िया ने तत्त्वार्थाधिगमसूत्र एवं उसके स्वोपज्ञभाष्य की सिद्धसेनगणी की टीका के द्वितीय विभाग के प्रारंभ की अँगरेजी भूमिका में, डॉ० सुजिको ओहिरो ने अपने निबन्ध 'तत्त्वार्थसूत्र का मूलपाठ' में इसे श्वेताम्बरपरम्परा का ग्रन्थ सिद्ध करने का प्रयास किया है। स्थानकवासी आचार्य आत्मराज जी महाराज ने 'तत्त्वार्थसूत्र-जैनागम-समन्वय' में तत्त्वार्थ के पाठों का आगमिक आधार प्रस्तुत करते हुए इसे श्वेताम्बरपरम्परा की ही कृति माना है। श्वेताम्बर-मूर्तिपूजक-परम्परा के सागरानन्द सूरीश्वर जी ने तत्त्वार्थसूत्र के कर्त्ता श्वेताम्बर हैं और सर्वार्थसिद्धिमान्य पाठ संशोधित है, यह सिद्ध करने के लिए ९६ पृष्ठों की एक पुस्तक (तत्त्वार्थकर्तृतन्मत-निर्णय) ही लिख डाली है। यद्यपि श्वेताम्बर और दिगम्बर विद्वानों का यह आग्रह उचित नहीं है। तत्त्वार्थसूत्र और उसके लेखक उस **मूलधारा** के हैं, जिससे इन विभिन्न परम्पराओं का विकास हुआ है।'' (जै.ध.या.स./पृ.२६२-२६३)।

''--- उनकी (उमास्वाति की) यह उच्चनागरी शाखा न तो श्वेताम्बर है और न यापनीय, अपितु दोनों की ही पूर्वज है। अतः उमास्वाति श्वेताम्बर और यापनीय दोनों के पूर्वपुरुष हैं। पुनः उमास्वाति उस काल में हुए हैं, जब कि निर्ग्रन्थसंघ में श्वेताम्बर, दिगम्बर और यापनीय जैसे भेद अस्तित्व में नहीं आये थे।'' (जै.ध.या.स./पृ.३५५-३५६)।

२

उमास्वाति को उक्त सम्प्रदाय का आचार्य मानने के हेतु

उपर्युक्त कथनों में डॉ० सागरमल जी ने उमास्वाति को दिगम्बर, श्वेताम्बर और यापनीय सम्प्रदायों से पूर्ववर्ती माने गये स्वकल्पित उत्तरभारतीय-सचेलाचेल-निर्ग्रन्थ-सम्प्रदाय का आचार्य बतलाया है। इसके कारण बतलाते हुए वे लिखते हैं—

१. ''काल की दृष्टि से उमास्वाति ईस्वी सन् की प्रथम शताब्दी के पश्चात् और चतुर्थ शताब्दी के पूर्व हुए हैं। प्रो० ढाकी के द्वारा उनका काल ईस्वी सन् ३७५-४०० माना गया है। उनके इस काल के आधार पर उन्हें न तो श्वेताम्बर, न दिगम्बर

और न यापनीय ही कहा जा सकता है। वस्तुतः वे उस काल में हुए हैं, जब उत्तरभारत के निर्ग्रन्थसंघ में आचार एवं विचार सम्बन्धी अनेक मतभेद अस्तित्व मे आ गये थे, किन्तु उस युग तक साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण होकर श्वेताम्बर, दिगम्बर या यापनीय परम्पराओं का जन्म नहीं हुआ था। हमें पाँचवीं शताब्दी के पूर्व न तो अभिलेखों में और न साहित्यिक स्रोतों में ऐसे कोई संकेत मिलते हैं, जिनके आधार पर यह माना जा सके कि उस काल तक श्वेताम्बर (श्वेतपट्ट), दिगम्बर या यापनीय ऐसे नाम अस्तित्व में आ गये थे। यद्यपि वस्त्र-पात्रादि को लेकर विवाद का प्रादुर्भाव हो चुका था, किन्तु संघ स्पष्टरूप से खेमों में विभाजित होकर श्वेताम्बर, यापनीय और दिगम्बर ऐसे नामों से अभिहित नहीं हुआ था। उस काल तक मान्यताभेद और आचारभेद को लेकर विभिन्न गण, कुल और शाखाएँ तो अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रखती थीं, किन्तु सम्प्रदाय नहीं बने थे। अतः काल की दृष्टि से उमास्वाति न तो श्वेताम्बर थे और न यापनीय ही थे, अपितु वे उस पूर्वज धारा के प्रतिनिधि हैं, जिससे ये दोनों परम्परायें विकसित हुई हैं। हाँ, इतना अवश्य है कि दक्षिण भारत की अचेलधारा, जो आगे चलकर दिगम्बर नाम से जानी गई, उससे वे सीधे रूप से सम्बन्धित नहीं थे।

२. "यह सत्य है कि तत्त्वार्थसूत्र की कुछ मान्यताएँ श्वेताम्बर आगमों के और कुछ मान्यताएँ दिगम्बरमान्य आगमों के विरोध में जाती हैं। यह भी सत्य है कि उसकी कुछ मान्यताएँ यापनीयग्रन्थों में यथावत् रूप में पायी जाती हैं, किन्तु इस सबसे हम इस निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सकते कि वे श्वेताम्बर, दिगम्बर या यापनीय परम्परा के थे। जैसा कि हमने पूर्व में संकेत किया है, उमास्वाति उस काल में हुए हैं, जब वैचारिक एवं आचारगत मतभेदों के होते हुए भी साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण नहीं हुआ था। इसी का परिणाम है कि उनके ग्रन्थों में कुछ तथ्य श्वेताम्बरों के अनुकूल और कुछ प्रतिकूल, कुछ तथ्य दिगम्बरों के अनुकूल और कुछ प्रतिकुल तथा कुछ तथ्य यापनीयों के अनुकूल एवं कुछ उनके प्रतिकूल पाये जाते हैं। वस्तुतः उनकी जो भी मान्यताएँ हैं, उच्चनागर शाखा की मान्यताएँ हैं। अतः मान्यताओं के आधार पर वे कोटिकगण की उच्चनागर शाखा के थे। उन्हें श्वेताम्बर, दिगम्बर या यापनीय मान लेना संभव नहीं है।" (जै.ध.या.स./पृ.३८१-३८२)।

यहाँ डॉक्टर सा० ने उमास्वाति को स्वकल्पित उत्तरभारतीय-सचेलाचेल-निर्ग्रन्थ-परम्परा का मानने के दो हेतु बतलाये हैं—१. उमास्वाति के अस्तित्वकाल तक दिगम्बर, श्वेताम्बर और यापनीय सम्प्रदायों का उदय न होना तथा, २. उनकी मान्यताओं का इन तीन सम्प्रदायों में से किसी के भी पूर्ण अनुकूल न होना। किन्तु ये हेतु प्रामाणिक नहीं हैं। इनका निरसन नीचे किया जा रहा है।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

निरसन

१. उमास्वाति को जिस उत्तरभारतीय-सचेलाचेल-निर्ग्रन्थ-सम्प्रदाय का बतलाया गया है, उसका अस्तित्व ही नहीं था, वह डॉ० सागरमल जी द्वारा कल्पित है, यह प्रस्तुत ग्रन्थ के द्वितीय अध्याय (प्रकरण ३) में सप्रमाण सिद्ध किया जा चुका है। अतः उमास्वाति का उस काल्पनिक सम्प्रदाय से सम्बद्ध होना संभव ही नहीं हैं।

२. उक्त सम्प्रदाय का अस्तित्व होता भी, तो उसका श्वेताम्बर और यापनीय सम्प्रदायों में विभाजन कदापि संभव नहीं था, क्योंकि उसमें सचेल और अचेल दोनों लिंगों में से किसी भी लिंग को अपनाने का विकल्प था। जो अचेललिंग धारण करने में असमर्थ थे, उनके लिए सचेललिंग धारण करने की स्वतंत्रता थी, वे अचेललिंग ग्रहण करने के लिए बाध्य नहीं थे। सचेललिंग को लेकर संघविभाजन तभी हो सकता था, जब उक्त संघ में अचेललिंग ही अनिवार्य होता, किन्तु ऐसा नहीं था। इसी प्रकार अचेललिंग को लेकर भी किसी को अलग होने की आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि उसे भी अपनाने की स्वतंत्रता उक्त सम्प्रदाय देता था। और यापनीय नामक सम्प्रदाय बनानेवालों के तो उक्त सम्प्रदाय से पृथक् होने का प्रश्न ही नहीं उठ सकता था, क्योंकि वे अचेल और सचेल दोनों लिंगों से मुक्ति के समर्थक थे और उक्त सम्प्रदाय ऐसा ही था। वस्तुतः तथाकथित उत्तरभारतीय-सचेलाचेल-निर्ग्रन्थ सम्प्रदाय के माने गये सिद्धान्त यापनीयसम्प्रदाय के ही सिद्धान्त हैं। इसलिए सचेलाचेल-मुक्ति के समर्थकों को कोई पृथक् सम्प्रदाय बनाने और उसे 'यापनीय' नाम देने की आवश्यकता नहीं थी। उत्तरभारतीय-सचेलाचेल-निर्ग्रन्थ सम्प्रदाय नाम से ही वह प्रसिद्ध रहता। इस तरह उक्त सम्प्रदाय के विभाजित होने के कोई कारण ही उसमें विद्यमान नहीं थे। इससे सिद्ध होता है कि उसके विभाजन की घटना काल्पनिक है। (इसका विस्तृत विवेचन अध्याय २/प्र.४/शी.२ में द्रष्टव्य है)।

इस तरह जो श्वेताम्बर और यापनीय सम्प्रदाय उक्त सम्प्रदाय से उत्पन्न ही नहीं हुए, उमास्वाति उनके पूर्वपुरुष कैसे हो सकते थे? कदापि नहीं।

३. यह मान्यता भी मिथ्या है कि ईसा की पाँचवीं शती के पूर्व किसी अभिलेख या साहित्यिक स्रोत में दिगम्बर, श्वेताम्बर आदि सम्प्रदायों के नाम उपलब्ध नहीं होते। सम्राट् अशोक के दिल्ली (टोपरा) के सातवें स्तम्भ लेख (ईसापूर्व २४२) में **निर्ग्रन्थों** (**निगंठेसु**) का उल्लेख है। (देखिये, अध्याय २/प्र.६/शी.२)। **निर्ग्रन्थ** शब्द दिगम्बर जैन मुनियों का वाचक है, यह पाँचवीं शताब्दी ई० के **श्रीविजयशिवमृगेशवर्मा** एवं **मृगेशवर्मा** के देवागिरि एवं हल्सी के तामपत्रलेखों से सिद्ध है। तथा ईसापूर्व छठी शती के बुद्धवचनसंग्रहरूप त्रिपिटकसाहित्यगत **अंगुत्तरनिकाय** नामक ग्रन्थ में और प्रथम

शताब्दी ई० के बौद्धग्रन्थ **दिव्यावदान** में **निर्ग्रन्थ** शब्द से दिगम्बरजैन साधुओं का कथन किया गया है (देखिये, अध्याय ४/ प्र.२/शी.१.१ एवं १४)। इसी प्रकार अशोक-कालीन या ईसापूर्व प्रथम शताब्दी में रचित बौद्धग्रन्थ **अपदान** में **सेतवत्थ** (श्वेत-वस्त्र=श्वेतपट) नाम से श्वेताम्बर साधुओं का उल्लेख मिलता है। (देखिये, अध्याय ४/ प्र.२/शी.१.२)। इन ऐतिहासिक प्रमाणों से ये दोनों मान्यताएँ धराशायी हो जाती हैं कि पाँचवीं शती ई० के पूर्व तक दिगम्बर और श्वेताम्बर सम्प्रदाय अस्तित्व में नहीं आये थे और तब तक एकमात्र उत्तरभारतीय-सचेलाचेल-निर्ग्रन्थसम्प्रदाय का अस्तित्व था। यतः इन प्रमाणों से यह सिद्ध हो जाता है कि **निर्ग्रन्थ (दिगम्बरजैन) संघ** का अस्तित्व बौद्धकाल एवं सम्राट् अशोक के काल (ईसापूर्व २४२) में भी था और **श्वेतपटसंघ** अशोककाल अथवा ईसापूर्व प्रथम शताब्दी में भी विद्यमान था, अतः यह निर्विवाद स्थापित होता है कि पाँचवीं शती ई० के पूर्व उत्तरभारतीय-सचेलाचेल-निर्ग्रन्थ सम्प्रदाय नाम का कोई भी सम्प्रदाय विद्यमान नहीं था, केवल निर्ग्रन्थसंघ (दिगम्बरजैन-संघ) एवं श्वेतपटसंघ का अस्तित्व था। अतः तत्त्वार्थसूत्र के भाष्यमान्य पाठ और भाष्य (तत्त्वार्थाधिगमभाष्य) के कर्त्ता उमास्वाति श्वेताम्बर ही थे।

४. भाष्यगत सैद्धान्तिक समानता के कारण भाष्यकार का यापनीय होना भी संभव है। भाष्य में स्वीकृत सवस्त्रमुक्ति, स्त्रीमुक्ति आदि की मान्यताएँ यह निश्चित करती हैं कि भाष्यकार श्वेताम्बर या यापनीय के अतिरिक्त और किसी सम्प्रदाय के नहीं हैं, उत्तरभारतीय-सचेलाचेल-निर्ग्रन्थसम्प्रदाय के तो कदापि नहीं, क्योंकि वह कपोलकल्पित है।

✧✧✧

निरसन

१. उमास्वाति को जिस उत्तरभारतीय-सचेलाचेल-निर्ग्रन्थ-सम्प्रदाय का बतलाया गया है, उसका अस्तित्व ही नहीं था, वह डॉ० सागरमल जी द्वारा कल्पित है, यह प्रस्तुत ग्रन्थ के द्वितीय अध्याय (प्रकरण ३) में सप्रमाण सिद्ध किया जा चुका है। अतः उमास्वाति का उस काल्पनिक सम्प्रदाय से सम्बद्ध होना संभव ही नहीं हैं।

२. उक्त सम्प्रदाय का अस्तित्व होता भी, तो उसका श्वेताम्बर और यापनीय सम्प्रदायों में विभाजन कदापि संभव नहीं था, क्योंकि उसमें सचेल और अचेल दोनों लिंगों में से किसी भी लिंग को अपनाने का विकल्प था। जो अचेललिंग धारण करने में असमर्थ थे, उनके लिए सचेललिंग धारण करने की स्वतंत्रता थी, वे अचेललिंग ग्रहण करने के लिए बाध्य नहीं थे। सचेललिंग को लेकर संघविभाजन तभी हो सकता था, जब उक्त संघ में अचेललिंग ही अनिवार्य होता, किन्तु ऐसा नहीं था। इसी प्रकार अचेललिंग को लेकर भी किसी को अलग होने की आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि उसे भी अपनाने की स्वतंत्रता उक्त सम्प्रदाय देता था। और यापनीय नामक सम्प्रदाय बनानेवालों के तो उक्त सम्प्रदाय से पृथक् होने का प्रश्न ही नहीं उठ सकता था, क्योंकि वे अचेल और सचेल दोनों लिंगों से मुक्ति के समर्थक थे और उक्त सम्प्रदाय ऐसा ही था। वस्तुतः तथाकथित उत्तरभारतीय-सचेलाचेल-निर्ग्रन्थ सम्प्रदाय के माने गये सिद्धान्त यापनीयसम्प्रदाय के ही सिद्धान्त हैं। इसलिए सचेलाचेल-मुक्ति के समर्थकों को कोई पृथक् सम्प्रदाय बनाने और उसे 'यापनीय' नाम देने की आवश्यकता नहीं थी। उत्तरभारतीय-सचेलाचेल-निर्ग्रन्थ सम्प्रदाय नाम से ही वह प्रसिद्ध रहता। इस तरह उक्त सम्प्रदाय के विभाजित होने के कोई कारण ही उसमें विद्यमान नहीं थे। इससे सिद्ध होता है कि उसके विभाजन की घटना काल्पनिक है। (इसका विस्तृत विवेचन अध्याय २/प्र.४/शी.२ में द्रष्टव्य है)।

इस तरह जो श्वेताम्बर और यापनीय सम्प्रदाय उक्त सम्प्रदाय से उत्पन्न ही नहीं हुए, उमास्वाति उनके पूर्वपुरुष कैसे हो सकते थे? कदापि नहीं।

३. यह मान्यता भी मिथ्या है कि ईसा की पाँचवीं शती के पूर्व किसी अभिलेख या साहित्यिक स्रोत में दिगम्बर, श्वेताम्बर आदि सम्प्रदायों के नाम उपलब्ध नहीं होते। सम्राट् अशोक के दिल्ली (टोपरा) के सातवें स्तम्भ लेख (ईसापूर्व २४२) में **निर्ग्रन्थों** (**निगंठेसु**) का उल्लेख है। (देखिये, अध्याय २/प्र.६/शी.२)। **निर्ग्रन्थ** शब्द दिगम्बर जैन मुनियों का वाचक है, यह पाँचवीं शताब्दी ई० के **श्रीविजयशिवमृगेशवर्मा** एवं **मृगेशवर्मा** के देवागिरि एवं हल्सी के तामपत्रलेखों से सिद्ध है। तथा ईसापूर्व छठी शती के बुद्धवचनसंग्रहरूप त्रिपिटकसाहित्यगत **अंगुत्तरनिकाय** नामक ग्रन्थ में और प्रथम

शताब्दी ई० के बौद्धग्रन्थ **दिव्यावदान** में **निर्ग्रन्थ** शब्द से दिगम्बरजैन साधुओं का कथन किया गया है (देखिये, अध्याय ४/ प्र.२/शी.१.१ एवं १४)। इसी प्रकार अशोक-कालीन या ईसापूर्व प्रथम शताब्दी में रचित बौद्धग्रन्थ **अपदान** में **सेतवत्थ** (श्वेत-वस्त्र=श्वेतपट) नाम से श्वेताम्बर साधुओं का उल्लेख मिलता है। (देखिये, अध्याय ४/ प्र.२/शी.१.२)। इन ऐतिहासिक प्रमाणों से ये दोनों मान्यताएँ धराशायी हो जाती हैं कि पाँचवीं शती ई० के पूर्व तक दिगम्बर और श्वेताम्बर सम्प्रदाय अस्तित्व में नहीं आये थे और तब तक एकमात्र उत्तरभारतीय-सचेलाचेल-निर्ग्रन्थसम्प्रदाय का अस्तित्व था। यतः इन प्रमाणों से यह सिद्ध हो जाता है कि **निर्ग्रन्थ (दिगम्बरजैन) संघ** का अस्तित्व बौद्धकाल एवं सम्राट् अशोक के काल (ईसापूर्व २४२) में भी था और **श्वेतपटसंघ** अशोककाल अथवा ईसापूर्व प्रथम शताब्दी में भी विद्यमान था, अतः यह निर्विवाद स्थापित होता है कि पाँचवीं शती ई० के पूर्व उत्तरभारतीय-सचेलाचेल-निर्ग्रन्थ सम्प्रदाय नाम का कोई भी सम्प्रदाय विद्यमान नहीं था, केवल निर्ग्रन्थसंघ (दिगम्बरजैन-संघ) एवं श्वेतपटसंघ का अस्तित्व था। अतः तत्त्वार्थसूत्र के भाष्यमान्य पाठ और भाष्य (तत्त्वार्थाधिगमभाष्य) के कर्त्ता उमास्वाति श्वेताम्बर ही थे।

४. भाष्यगत सैद्धान्तिक समानता के कारण भाष्यकार का यापनीय होना भी संभव है। भाष्य में स्वीकृत सवस्त्रमुक्ति, स्त्रीमुक्ति आदि की मान्यताएँ यह निश्चित करती हैं कि भाष्यकार श्वेताम्बर या यापनीय के अतिरिक्त और किसी सम्प्रदाय के नहीं हैं, उत्तरभारतीय-सचेलाचेल-निर्ग्रन्थसम्प्रदाय के तो कदापि नहीं, क्योंकि वह कपोलकल्पित है।

✧✧✧

षष्ठ प्रकरण

तत्त्वार्थसूत्र का रचनाकाल द्वितीय शताब्दी ई०

डॉ० सागरमल जी ने तत्त्वार्थसूत्र का रचनाकाल निर्धारित करने के लिए गुणस्थान-सिद्धान्त को आधार बनाया है। वे लिखते हैं कि तत्त्वार्थसूत्र में गुणस्थानसिद्धान्त के बीजमात्र मिलते हैं, उसका पूर्ण विकसित रूप दृष्टिगोचर नहीं होता, जबकि षट्-खण्डागम, भगवती-आराधना, मूलाचार और कुन्दकुन्द के ग्रन्थों में वह पूर्ण विकसित रूप में उपलब्ध होता है। इससे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि तत्त्वार्थसूत्र की रचना षट्खण्डागम आदि के पूर्व हुई है।[१६५] उनका कथन है कि "ये सभी ग्रन्थ लगभग पाँचवीं शती के आसपास के हैं। इसलिए इतना तो निश्चित है कि **तत्त्वार्थ** की रचना चौथी-पाँचवीं शताब्दी के पूर्व की है।"[१६६] फिर वे और भी अन्य बातों का विचार करके लिखते हैं—"इस समस्त चर्चा से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उमास्वाति का काल वि० सं० की तीसरी और चौथी शताब्दी के मध्य है।"[१६७]

डॉक्टर साहब की तथाकथित **गुणस्थानसिद्धान्त के विकास की अवधारणा** कपोलकल्पित है, यह दशम अध्याय के पंचम प्रकरण में सप्रमाण सिद्ध किया जा चुका है। तत्त्वार्थसूत्रकार को गुणस्थानसिद्धान्त अपने परिपूर्णरूप में पूर्वाचार्यों द्वारा रचित षट्खण्डागम, कसायपाहुड, समयसार, भगवती-आराधना, मूलाचार आदि दिगम्बरग्रन्थों की परम्परा से प्राप्त हुआ था और उसके आधार पर उन्होंने तत्त्वार्थसूत्र में परीषहों और चतुर्विधध्यानों के स्वामित्व का सूक्ष्म और सटीक निरूपण किया है। यह तथ्य **आचार्य कुन्दकुन्द का समय** नामक दशम अध्याय में विस्तार से प्रतिपादित किया गया है। यतः तत्त्वार्थसूत्र में गुणस्थानसिद्धान्त अपने परिपूर्णरूप में उपलब्ध है, अतः उसके विकास की कल्पना निराधार है। इसलिए विकास की कल्पना के आधार पर तत्त्वार्थसूत्र को प्राचीन और षट्खण्डागम आदि ग्रन्थों को अर्वाचीन मानना भी निराधार है।

प्रस्तुत अध्याय के चतुर्थ प्रकरण में सोदाहरण सिद्ध किया गया है कि सूत्रकार ने **तत्त्वार्थसूत्र** की रचना षट्खण्डागम, समयसार, पंचास्तिकाय, भगवती-आराधना आदि दिगम्बरग्रन्थों के आधार पर की है। इससे स्पष्ट है कि उसकी रचना इन ग्रन्थों की

---

१६५. जैनधर्म का यापनीय सम्प्रदाय/पृ.३६७-३६८।
१६६. वही/पृ. ३६८।
१६७. वही/पृ. ३७२।

रचना के बाद हुई है। दिगम्बर-पट्टावलियों और शिलालेखों में **तत्त्वार्थसूत्र** के कर्त्ता **गृध्रपिच्छाचार्य** का नाम आचार्य कुन्दकुन्द के बाद आया है और कुन्दकुन्द का समय ईसापूर्व प्रथम शताब्दी का उत्तरार्ध एवं ईसोत्तर प्रथम शताब्दी का पूर्वार्ध निश्चित किया गया है, अतः तत्त्वार्थसूत्र के कर्त्ता गृध्रपिच्छाचार्य द्वितीय शताब्दी ई० के पूर्वार्ध में हुए थे।[१६८] इसलिए तत्त्वार्थसूत्र का रचनाकाल यही है।

इस प्रकार इन छह प्रकरणों में प्रस्तुत किये गये ये बहुविध प्रमाण इस बात के साक्षी हैं कि तत्त्वार्थसूत्र दिगम्बरग्रन्थ ही है, श्वेताम्बरग्रन्थ नहीं।

---

१६८. देखिए, अध्याय १०/प्रकरण १/शीर्षक ४.१. 'तत्त्वार्थसूत्र का रचनाकाल।'

✧✧✧

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

षष्ठ प्रकरण

तत्त्वार्थसूत्र का रचनाकाल द्वितीय शताब्दी ई०

डॉ० सागरमल जी ने तत्त्वार्थसूत्र का रचनाकाल निर्धारित करने के लिए गुणस्थान-सिद्धान्त को आधार बनाया है। वे लिखते हैं कि तत्त्वार्थसूत्र में गुणस्थानसिद्धान्त के बीजमात्र मिलते हैं, उसका पूर्ण विकसित रूप दृष्टिगोचर नहीं होता, जबकि षट्-खण्डागम, भगवती-आराधना, मूलाचार और कुन्दकुन्द के ग्रन्थों में वह पूर्ण विकसित रूप में उपलब्ध होता है। इससे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि तत्त्वार्थसूत्र की रचना षट्खण्डागम आदि के पूर्व हुई है।[१६५] उनका कथन है कि "ये सभी ग्रन्थ लगभग पाँचवीं शती के आसपास के हैं। इसलिए इतना तो निश्चित है कि **तत्त्वार्थ** की रचना चौथी-पाँचवीं शताब्दी के पूर्व की है।"[१६६] फिर वे और भी अन्य बातों का विचार करके लिखते हैं—"इस समस्त चर्चा से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उमास्वाति का काल वि० सं० की तीसरी और चौथी शताब्दी के मध्य है।"[१६७]

डॉक्टर साहब की तथाकथित **गुणस्थानसिद्धान्त के विकास की अवधारणा** कपोलकल्पित है, यह दशम अध्याय के पंचम प्रकरण में सप्रमाण सिद्ध किया जा चुका है। तत्त्वार्थसूत्रकार को गुणस्थानसिद्धान्त अपने परिपूर्णरूप में पूर्वाचार्यों द्वारा रचित षट्खण्डागम, कसायपाहुड, समयसार, भगवती-आराधना, मूलाचार आदि दिगम्बरग्रन्थों की परम्परा से प्राप्त हुआ था और उसके आधार पर उन्होंने तत्त्वार्थसूत्र में परीषहों और चतुर्विधध्यानों के स्वामित्व का सूक्ष्म और सटीक निरूपण किया है। यह तथ्य **आचार्य कुन्दकुन्द का समय** नामक दशम अध्याय में विस्तार से प्रतिपादित किया गया है। यतः तत्त्वार्थसूत्र में गुणस्थानसिद्धान्त अपने परिपूर्णरूप में उपलब्ध है, अतः उसके विकास की कल्पना निराधार है। इसलिए विकास की कल्पना के आधार पर तत्त्वार्थसूत्र को प्राचीन और षट्खण्डागम आदि ग्रन्थों को अर्वाचीन मानना भी निराधार है।

प्रस्तुत अध्याय के चतुर्थ प्रकरण में सोदाहरण सिद्ध किया गया है कि सूत्रकार ने **तत्त्वार्थसूत्र** की रचना षट्खण्डागम, समयसार, पंचास्तिकाय, भगवती-आराधना आदि दिगम्बरग्रन्थों के आधार पर की है। इससे स्पष्ट है कि उसकी रचना इन ग्रन्थों की

---

१६५. जैनधर्म का यापनीय सम्प्रदाय/पृ.३६७-३६८।
१६६. वही/पृ. ३६८।
१६७. वही/पृ. ३७२।

सप्तम प्रकरण

तत्त्वार्थसूत्र के यापनीयग्रन्थ न होने के प्रमाण

दिगम्बर विद्वान् **पं० नाथूराम जी प्रेमी** मानते हैं कि तत्त्वार्थसूत्र और भाष्य दोनों के कर्त्ता उमास्वाति हैं। और ऐसा मानते हुए उन्होंने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि तत्त्वार्थसूत्र **यापनीयपरम्परा** का ग्रन्थ है। किन्तु इसके समर्थन में उन्होंने जो तर्क दिये हैं, वे यथार्थ से परे हैं। अतः उनसे यह सिद्ध नहीं होता कि तत्त्वार्थसूत्र यापनीयग्रन्थ है। यहाँ उनके तर्कों का निराकरण किया जा रहा है—

प्रेमी जी

''तत्त्वार्थसूत्रकर्तारमुमास्वातिमुनीश्वरम्।
श्रुतकेवलिदेशीयं वन्देऽहं गुणमन्दिरम्॥

''इस श्लोक में उमास्वाति को **श्रुतकेवलिदेशीय** विशेषण दिया गया है और यही विशेषण वैयाकरण शाकटायन के साथ लगा हुआ मिलता है, साथ ही इसी शिलालेख में शाकटायन की भी स्तुति की गई है। 'श्रुतकेवलिदेशीय' का अर्थ होता है 'श्रुतकेवली के तुल्य' और शाकटायन यापनीय थे।'' (जै.सा.इ./द्वि.सं./पृ.५३४)। इस विशेषण की समानता से सिद्ध होता है कि उमास्वाति भी यापनीय थे।

प्रो० (डॉ०) ए० एन० उपाध्ये ने भी इसी तर्क से तत्त्वार्थसूत्रकार उमास्वाति को यापनीय आचार्य सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। वे अपने **जैनसम्प्रदाय के यापनीय-संघ पर कुछ और प्रकाश** नामक लेख में लिखते हैं—''विख्यात वैयाकरण शाकटायन ने आत्मप्रशस्ति में निम्नप्रकार लिखा है—''**इति श्रीश्रुतकेवलिदेशीयाचार्यस्य शाकटायनस्य कृतौ शब्दानुशासने**'' इत्यादि। सम्भवतः यही तरीका है, जिससे यापनीय साधु (गुरु) स्वयं को दूसरों से पृथक् दिखलाया करते थे। तत्त्वार्थसूत्र के कर्त्ता उमास्वाति ने भी ऐसा ही वर्णन किया है—

तत्त्वार्थसूत्र कर्त्तारमुमास्वाति मुनीश्वरम्।
श्रुतकेवलिदेशीयं वन्देऽहं गुणमन्दिरम्॥''

(मूल अँगरेजी लेख के हिन्दी-अनुवादक : श्री कुन्दनलाल जैन/'अनेकान्त': महावीर निर्वाण विशेषांक/सन् १९७५ ई०/पृष्ठ २५२)।

निराकरण

यहाँ पहले तो यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि पाल्यकीर्ति शकटायन को तो 'श्रुतकेवलिदेशीय' स्वयं शाकटायन ने कहा है, किन्तु तत्त्वार्थसूत्रकार उमास्वाति को

श्रुतकेवलिदेशीय स्वयं तत्त्वार्थसूत्रकार ने नहीं कहा, अपितु शिलालेख के कवि ने कहा है। (जै.शि.सं./मा.च./भा.३/ले.क्र.६६७/पृ.५१८)। अतः तत्त्वार्थसूत्रकार उमास्वाति में यापनीय-प्रवृत्ति का अस्तित्व सिद्ध नहीं होता।'

दूसरी बात यह है कि उक्त श्लोक नन्दिसंघीय दिगम्बराचार्यों का वर्णन करनेवाले शिलालेख में उत्कीर्ण है, यापनीय-आचार्यों का वर्णन करनेवाले शिलालेख में नहीं। यथा—

स चतुर्दशपूर्व्वेशो **भद्रबाहु**र्ज्जयत्यरम्।
दशपूर्व्वधराधीश-**विशाख**-प्रमुखार्च्चितः॥

तत्त्वार्थसूत्रकर्त्तार**मुमास्वाति**मुनीश्वरम्।
श्रुतकेवलिदेशीयं वन्देऽहं गुणमन्दिरम्॥

श्री **कुन्दकुन्दान्वय-नन्दि सङ्घे**।
योगीश-राज्येन मतां ----॥

जीयात्**समन्तभद्रस्य** **देवागमन**-संज्ञिनः
स्तोत्रस्य भाष्यं कृतवानकलङ्को महर्द्धिकः।
अलञ्चकार यस्सर्वम**ाप्तमीमांसितं** मतम्।
स्वामि-विद्यादिनन्दाय नमस्तस्मै महात्मने॥

चित्रं **प्रभाचन्द्र** इह क्षमायाम्
मार्त्तण्ड-वृद्धौ नितरां व्यदीपित्।
सुखी--- **न्यायकुमुदचन्द्रोदय**कृते नमः
शाकटायन-कृत-**सूत्रन्यासकर्त्रे** व्रतीन्दवे॥
न्यासं जिनेन्द्रसंज्ञं सकलबुधनुतं पाणिनीयस्य भूयो-
न्यासं शब्दावतारं मनुजततिहितं **वैद्यशास्त्रं** च कृत्वा।
यस्तत्त्वार्थस्य टीकां व्यरचयदिह तां भात्यसौ पूज्यापाद-
स्वामी भूपालवन्द्यः स्वपरहितवचः पूर्ण्ण-दृग्बोधवृत्तः॥[१६९]

इन पद्यों में चतुर्दशपूर्वेश (श्रुतकेवली) भद्रबाहु, दर्शपूर्वधर विशाखाचार्य, नन्दि-संघीय कुन्दकुन्दान्वय में प्रसूत देवागमस्तोत्र के कर्त्ता स्वामी समन्तभद्र, 'देवागम' पर

---

१६९. EC, VIII, Nagar tl., No. 46 (जैनशिलालेख संग्रह/माणिकचन्द्र/भाग ३/ लेख क्र. ६६७/हुम्मच-कन्नड़/लगभग १५३० ई./पृष्ठ ५१७-५१९, ५२९)।

अष्टशती (देवागम-विवृति) नामक भाष्य लिखनेवाले अकलंकदेव, 'आप्तमीमांसा' (देवागम) पर अष्टसहस्री (देवागमालंकार) नामक भाष्य रचनेवाले स्वामी विद्यानन्द, 'प्रेमयकमलमार्त्तण्ड', 'न्यायकुमुदचन्द्रोदय' एवं शाकटायन-न्यास, (शाकटायन-व्याकरण-व्याख्या) के कर्त्ता आचार्य प्रभाचन्द्र तथा 'जैनेन्द्रन्यास' (जैनेन्द्रव्याकरण), पाणिनि के सूत्रों पर 'शब्दावतार' नामक न्यास, वैद्यशास्त्र और तत्त्वार्थटीका (सर्वार्थसिद्धि) के रचयिता पूज्यपादस्वामी एवं उनकी कृतियों का उल्लेख है। ये सभी दिगम्बरजैनाचार्य हैं। उक्त पद्यों के अनन्तर भी अनेक पद्य हैं, जिनमें पात्र-केसरी, त्रिलोकसारकर्त्ता नेमिचन्द्र, चामुण्डराय आदि अन्य अनेक दिगम्बर-जैनाचार्यों का वर्णन है।

१. इन दिगम्बरजैनाचार्यों के गुणकीर्तन एवं वन्दना के साथ आचार्य उमास्वाति का गुणकीर्तन एवं वन्दना की गयी है। इससे सिद्ध है कि वन्दना करनेवाला कवि एवं शिलालेख लिखानेवाले आचार्य, उनका संघ और राजा दिगम्बरजैन थे और वे उमास्वाति को दिगम्बर ही मानते थे। दिगम्बर होने के कारण वे किसी भी यापनीय-आचार्य को नमस्कार नहीं कर सकते थे, क्योंकि यापनीयसंघ पाँच जैनाभासों मे आता था और मूलसंघ से बहिष्कृत था। दिगम्बरजैन मुनि व श्रावक जैनाभास साधुओं को नमस्कार करना तो दूर, उनके द्वारा प्रतिष्ठापित जिनप्रतिमाओं को भी वन्दनीय नहीं मानते थे। (दंसणपाहुड / श्रुतसागरटीका / गा.११ तथा बोधपाहुड / श्रुतसागरटीका / गा. १०)। यदि शिलालेख-लेखन से सम्बद्ध कवि, मुनिसंघ और राजा यापनीय-सम्प्रदाय के होते, तो उन्हें दिगम्बर जैनाचार्यों, उनके गुणों और कृतियों के प्रशंसातिशय-सहित उल्लेख से कोई प्रयोजन न होता। अतः सिद्ध है कि वे दिगम्बरजैन थे और शिलालेखोल्लिखित अन्य दिगम्बर जैनाचार्यों के समान तत्त्वार्थसूत्रकार उमास्वाति को भी दिगम्बराजैनाचार्य ही मानते थे।

२. पं० नाथूराम जी प्रेमी ने कहा है कि उक्त शिलालेख में यापनीय-आचार्य शाकटायन की भी स्तुति की गयी है। प्रेमी जी का यह कथन सर्वथा असत्य है। शिलालेख में शाकटायन का नहीं, शाकटायन-व्याकरण पर प्रभाचन्द्र द्वारा लिखे गये न्यास का उल्लेख है और इस न्यास के कर्त्ता होने से न्यायचन्द्रोदयकार आचार्य प्रभाचन्द्र को नमस्कार किया गया है-"**न्यायकुमुदचन्द्रोदयकृते नमः शाकटायनकृतसूत्र-न्यासकर्त्रे** ---।" (देखिये, पूर्वोद्धृत पद्य)। अतः आचार्य उमास्वाति को यापनीय सिद्ध करने के लिए प्रेमी जी द्वारा प्रस्तुत हेतु मिथ्या है।

३. यदि शिलालेख के कवि आदि यापनीयसम्प्रदाय के होते, तो वे उमास्वाति के साथ पाल्यकीर्ति शाकटायन को भी श्रद्धापूर्वक नमस्कार करते और उनके साथ **श्रुतकेवलिदेशीय** उपाधि का प्रयोग किये बिना नहीं रहते, क्योंकि शाकटायन के साथ इस उपाधि का प्रयोग ईसा की ९वीं शती से होता आ रहा था, उक्त शिलालेख तो

१६वीं शती ई० में लिखा गया है। कोई शिलालेख-कवि यापनीयसम्प्रदाय का हो और वह शाकटायन के द्वारा रचे गये व्याकारण पर 'न्यास' लिखनेवाले दिगम्बराचार्य को तो नमस्कार करे और स्वयं शाकटायन को न करे, यह त्रिकाल में संभव नहीं है। अतः सिद्ध है कि शिलालेख का कवि एवं उसके मार्गदर्शक-प्रेरक मुनि एवं राजा यापनीयसम्प्रदाय के नहीं थे, अपितु दिगम्बरजैन थे। उनके द्वारा तत्त्वार्थसूत्रकार उमास्वाति की वन्दना की गयी है, यह इस बात का प्रमाण है कि वे उमास्वाति को दिगम्बराचार्य ही मानते थे। इससे यह भी प्रमाणित होता है कि आचार्यविशेष के लिए **श्रुतकेवलिदेशीय** विशेषण का प्रयोग दिगम्बरजैन-परम्परा में भी किया गया है। अतः किसी जैनाचार्य के साथ इस विशेषण का प्रयोग उसके यापनीय होने का प्रमाण नहीं है।

श्वेताम्बराचार्य हरिभद्रसूरि ने सिद्धसेन दिवाकर को **श्रुतकेवली** उपाधि से अभिहित किया है। इससे प्रो० ए० एन० उपाध्ये ने यह निष्कर्ष निकाला है कि अश्रुतकेवलियों के लिए **श्रुंतकेवली** उपाधि का प्रयोग यापनीयसंघ का वैशिष्ट्य है, अतः सिद्धेसन दिवाकर यापनीय थे। (Siddhasena's Nyayavatar And Other Works : A.N. Upadhye / Introduction / pp. XIII to ZVIII)। इसका खण्डन करते हुए डॉ० सागरमल जी लिखते हैं—"**श्रुतकेवली** विशेषण न केवल यापनीयपरम्परा के आचार्यों का, अपितु श्वेताम्बरपरम्परा के प्राचीन आचार्यों का भी विशेषण रहा है। यदि 'श्रुतकेवली' विशेषण श्वेताम्बर और यापनीय दोनों ही परम्पराओं में पाया जाता है, तो फिर यह निर्णय कर लेना कि सिद्धसेन यापनीय हैं, उचित नहीं होगा।" (जै.ध.या.स. /पृ. २३२)। मेरा भी यही तर्क है। जब दिगम्बरजैनाचार्यों का वर्णन करनेवाले उपर्युक्त शिलालेख में दिगम्बर जैनाचार्य उमास्वाति के साथ 'श्रुतकेवलिदेशीय' विशेषण का प्रयोग किया गया है, तब उसके प्रयोग को केवल यापनीयसंघ के आचार्य का लक्षण मानना तर्कसंगत नहीं है। अतः सिद्ध है कि 'श्रुतकेवलिदेशीय' विशेषण का प्रयोग होने पर भी तत्त्वार्थसूत्रकार उमास्वाति दिगम्बरजैन आचार्य ही हैं।

४. 'श्रुतकेवलिदेशीय' उपाधि अनुचित भी नहीं है, क्योंकि इसका अर्थ 'श्रुतकेवली' नहीं है, अपितु 'श्रुतकेवलि-सदृश' है, जो एक बहुश्रुत और अपनी 'तत्त्वार्थसूत्र' जैसी गागर में सागरवत् ज्ञानगम्भीर प्रामाणिक कृति से महान् लोकोपकार करनेवाले आचार्य के प्रति अनुरागातिरेक से भरे हुए भक्त की लेखनी से निकलना सामान्य बात है। यापनीय-आचार्य शाकटायन ने अपने लिए इस उपाधि का प्रयोग किया ही है और श्वेताम्बराचार्य हरभिद्रसूरि ने तो सिद्धसेन दिवाकर को 'श्रुतकेवली' ही कह दिया है। लगता है इन्हीं प्रयोगों से प्रभावित होकर उक्त शिलालेख के दिगम्बरजैन कवि ने अपने सम्प्रदाय के बहुश्रुत तत्त्वार्थसूत्रकार उमास्वाति को भी 'श्रुतकेवलिदेशीय' उपाधि से विभूषित कर दिया है।

प्रेमी जी

"आठवें अध्याय का अन्तिम सूत्र है—'**सद्वेद्यसम्यक्त्वहास्यरतिपुरुषवेद-शुभायुर्नामगोत्राणि पुण्यम्।**" (त.सू./श्वे./८/२६)। इसमें पुरुषवेद, हास्य, रति और सम्यक्त्वमोहनीय, इन चार प्रकृतियों को पुण्यरूप बतलाया है। परन्तु श्वेताम्बर-दिगम्बर दोनों ही सम्प्रदायों में इन्हें पुण्यप्रकृति नहीं माना है। इसलिए सिद्धसेनगणी को इस सूत्र की टीका करते हुए लिखना पड़ा कि "**कर्मप्रकृति ग्रन्थ का अनुसरण करने वाले तो ४२ प्रकृतियों को ही पुण्यरूप मानते हैं। उनमें सम्यक्त्व, हास्य, रति, पुरुषवेद नहीं हैं। सम्प्रदाय का विच्छेद हो जाने से मैं नहीं जानता कि इसमें भाष्यकार का क्या अभिप्राय है और कर्मप्रकृति-ग्रन्थ-प्रणेताओं का क्या? चौदहपूर्वधारी ही इसकी ठीक-ठीक व्याख्या कर सकते हैं।**[१७०] वास्तव में उक्त चार प्रकृतियों को पुण्यरूप **यापनीयसम्प्रदाय** ही मानता है और यह न जानने के कारण ही सिद्धसेनगणी उलझन में पड़कर कुछ निर्णय नहीं कर सके हैं। **अपराजित** यापनीय थे। उन्होंने भी **आराधना** की **विजयोदयाटीका** में उक्त चार प्रकृतियों को पुण्यरूप माना है। यथा—**सद्वेद्यं सम्यक्त्वं रतिहास्यपुंवेदाः शुभे नामगोत्रे शुभं चायुः पुण्यं, एतेभ्योऽन्यानि पापानि।**"[१७१] (जै.सा.इ./द्वि.सं./पृ. ५३४)।

निराकरण

तत्त्वार्थसूत्र के श्वेताम्बरमान्य पाठ एवं उसके भाष्य दोनों में उक्त प्रकृतियों को पुण्यप्रकृति बतलाया गया है, जब कि दिगम्बरमान्य पाठ में **सद्वेद्य** को छोड़कर शेष को पापप्रकृति ही कहा गया है। तथापि उनका पुण्यप्रकृतित्व दिगम्बराचार्यों को भी मान्य है, यह '**अपराजितसूरि : दिगम्बराचार्य**' नामक चतुर्दश अध्याय के द्वितीय प्रकरण (शीर्षक ११) में प्रतिपादित किया जा चुका है। अतः उक्त आधार पर तत्त्वार्थसूत्रकार को यापनीय मानना युक्तिसंगत नहीं है। इसके अतिरिक्त अपराजित सूरि ने सम्यक्त्वमोहनीय आदि को पुण्यप्रकृति मानते हुए भी भगवती-आराधना की टीका में सवस्त्रमुक्ति, स्त्रीमुक्ति और केवलिभुक्ति का जोरदार खण्डन किया है। इससे स्पष्ट है कि उनकी विचारधारा यापनीय-मतानुगामिनी नहीं थी। इस विचारधारा से वे पक्के दिगम्बर सिद्ध होते हैं। इसका भी कोई प्रमाण नहीं है कि उक्त प्रकृतियों को यापनीयसम्प्रदाय में पुण्यप्रकृति

---

१७०. "कर्मप्रकृतिग्रन्थानुसारिणस्तु द्वाचत्वारिंशत्प्रकृतीः पुण्याः कथयन्ति।---आसां च मध्ये सम्यक्त्वहास्यरतिपुरुषवेदा न सन्त्येवेति। कोऽभिप्रायो भाष्यकृतः को वा कर्मप्रकृतिग्रन्थ-प्रणायिनामिति सम्प्रदायविच्छेदान्मया तावन्न व्यज्ञायीति। चतुर्दशपूर्वधरादयस्तु संविदते यथावदिति निर्दोषं व्याख्यातम्।" तत्त्वार्थभाष्यवृत्ति ८/२६/पृ. १७८।

१७१. विजयोदयाटीका / भगवती-आराधना / गा. 'अणुकंपासुद्धुवओगो' १८२८/ पृ. ८१४।

माना जाता था। प्रेमी जी ने अपराजित सूरि को यापनीय माना है, किन्तु प्रस्तुत ग्रन्थ के चतुर्दश अध्याय में सिद्ध किया गया है कि वे शुद्ध दिगम्बर थे। अतः लगता है कि दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों सम्प्रदायों में कुछ आचार्य ऐसे थे, जो उक्त चार प्रकृतियों को पुण्यप्रकृति मानते थे।

प्रेमी जी

"सातवें अध्याय के तीसरे सूत्र के भाष्य में पाँच व्रतों की जो पाँच-पाँच भावनाएँ बतलायी हैं, उनमें से अचौर्यव्रत की भावनायें भगवती-आराधना के अनुसार हैं, सर्वार्थसिद्धि के अनुसार नहीं---। इससे भी मालूम होता है कि भाष्यकार और भगवती-आराधना के कर्त्ता दोनों एक ही सम्प्रदाय के हैं।" (जै.सा.इ./द्वि.सं./पृ.५३४-५३५)।

निराकरण

१.यदि अचौर्यव्रत की भावनाओं का वर्णन भगवती-आराधना के अनुसार[१७२] करने से भाष्यकार उमास्वाति यापनीय सिद्ध होते हैं, तो शेष चार व्रतों की भावनाओं का निरूपण सर्वार्थसिद्धि के अनुसार करने से दिगम्बर सिद्ध होते हैं। किन्तु वे यापनीय और दिगम्बर, दोनों एक साथ नहीं हो सकते। अतः प्रेमी जी के द्वारा प्रस्तुत हेतु हेत्वाभास है। अर्थात् उससे यह सिद्ध नहीं होता कि भाष्यकार यापनीय हैं।

२. **भगवती-आराधना** नामक त्रयोदश अध्याय में अनेक प्रमाणों से सिद्ध किया गया है कि उसके कर्त्ता दिगम्बर हैं, यापनीय नहीं, अतः उनके द्वारा वर्णित अचौर्यव्रत की भावनाओं का भाष्य में अनुकरण करने से न तो यह सिद्ध होता है कि भाष्यकार यापनीय हैं, न यह कि तत्त्वार्थसूत्रकार यापनीय हैं। पूर्व प्रस्तुत प्रमाणों से यह सिद्ध किया जा चुका है कि तत्त्वार्थसूत्रकार और भाष्यकार भिन्न-भिन्न व्यक्ति हैं, अतः प्रेमी जी का उन्हें अभिन्न मानना भी अप्रामाणिक है।

प्रेमी जी

"नवें अध्याय के सातवें सूत्र में अनित्य, अशरण आदि बारह अनुप्रेक्षाओं के नाम दिए हैं और भाष्य में कहा है—'**एता द्वादशानुप्रेक्षाः**।' ये बारह अनुप्रेक्षाएँ हैं।

१७२.क— अणणुण्णादग्गहणं असंगबुद्धी अणुण्णवित्ता वि।
एदावंतियउग्गहजायणमध उग्गहाणुस्स॥ १२०२॥
वज्जणमणण्णुणादगिहप्पवेसस्स गोयरादीसु।
उग्गहजायणमणुवीचिए तहा भावणा तइए॥ १२०३॥ भगवती-आराधना।
ख—"अस्तेयस्यानुवीच्यवग्रहयाचनमभीक्ष्णावग्रहयाचनमेतावदित्यवग्रहावधारणं समानधार्मिकेभ्योऽवग्रहयाचनमनुज्ञापितपानभोजनमिति।" तत्त्वार्थाधिगमभाष्य ७/३/ पृ.३२०।

परन्तु **डॉ० ए० एन० उपाध्ये** ने मुझे बतलाया है कि **उपलब्ध आगमों में कहीं भी पूरी बारह अनुप्रेक्षाएँ नहीं मिलतीं। कहीं चार हैं, कहीं दो हैं, कहीं एक,** जब कि **भगवती-आराधना** में (गाथा १७१५-१८७१) इन्हीं बारह भावनाओं का खूब विस्तार के साथ वर्णन है। इससे भी उमास्वाति और **भगवती-आराधना** के कर्त्ता एक ही परम्परा के मालूम होते हैं। कम से कम **उमास्वाति** उस परम्परा के नहीं जान पड़ते, जो इस समय उपलब्ध आगमों की अनुयायिनी है। **मूलाचार** में भी आठवें परिच्छेद में द्वादशानुप्रेक्षाओं का विस्तृत वर्णन है और वह भी **आराधना** की परम्परा का ग्रन्थ है।" (जै.सा.इ./द्वि.सं./पृ. ५३५-५३६)।

निराकरण

पहले सिद्ध किया जा चुका है कि **भगवती-आराधना** यापनीयपरम्परा का ग्रन्थ नहीं है, अपितु दिगम्बर-परम्परा का है। इसलिए उसमें और **तत्त्वार्थसूत्र** में वर्णित द्वादशानुप्रेक्षाओं में जो साम्य है, उससे तत्त्वार्थसूत्र दिगम्बरपरम्परा का ही ग्रन्थ सिद्ध होता है, यापनीयपरम्परा का नहीं। **मूलाचार** भी दिगम्बराचार्यकृत ही है, यह पूर्व में प्रमाणित किया जा चुका है।

प्रेमी जी

"तीसरे अध्याय के '**आर्या म्लेच्छाश्च**' सूत्र के भाष्य में **अन्तरद्वीपों** के नाम वहाँ के मनुष्यों के नाम से पड़े हुए बतलाये हैं, जैसे **एकोरुकों** का (एक टाँगवालों का) एकोरुकद्वीप आदि। परन्तु इसके विरुद्ध भाष्य-वृत्तिकर्त्ता **सिद्धसेन** कहते हैं कि उक्त द्वीपों के नाम से वहाँ के मनुष्यों के नाम पड़े हैं, जैसे **एकोरुकद्वीप** के रहने वाले **एकोरुक मनुष्य**। वास्तव में वे मनुष्य सम्पूर्ण अंग-प्रत्यंगों से पूर्ण सुन्दर मनोहर हैं। अर्थात् इस विषय में भाष्य और वृत्तिकार की मान्यता में भेद है। परन्तु **यापनीयों** की **विजयोदया टीका** में **भाष्य** के ही मत का प्रतिपादन किया गया है और यह भी भाष्यकार के यापनीय होने का प्रमाण है।" (जै.सा.इ./द्वि.सं./पृ.५३६)।

निराकरण

विजयोदया टीका के कर्त्ता अपराजित सूरि यापनीय नहीं, दिगम्बर हैं, यह पूर्व में सिद्ध किया जा चुका है। उनके मत में और भाष्यकार के मत में उपर्युक्त प्रकार से समानता है, इससे यही सिद्ध होता है कि दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों सम्प्रदायों में कुछ आचार्य ऐसे थे, जिनका उक्त द्वीपों के नामकरण के विषय में एक जैसा मत था। इसके अतिरिक्त पूर्व में सप्रमाण दर्शाया गया है कि तत्त्वार्थसूत्र की रचना द्वितीय शताब्दी ई० में हुई थी, जब कि यापनीयसंघ का उदय ईसा की पाँचवीं शताब्दी

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

के प्रारंभ में हुआ था। काल की यह पूर्वापरता दर्शाती है कि तत्त्वार्थसूत्रकार यापनीय हो ही नहीं सकते।

इस प्रकार तत्त्वार्थसूत्र के कर्त्ता गृध्रपिच्छाचार्य दिगम्बरपरम्परा के ही आचार्य हैं, वे न तो श्वेताम्बर हैं, न यापनीय। तत्त्वार्थाधिगमभाष्य के कर्त्ता उमास्वाति श्वेताम्बर हैं। वे यापनीय भी हो सकते हैं।

उपसंहार

तत्त्वार्थसूत्र दिगम्बरग्रन्थ : प्रमाण सूत्ररूप में

१. **तत्त्वार्थ** के सूत्र सवस्त्रमुक्ति, स्त्रीमुक्ति, गृहस्थमुक्ति, अन्यलिंगिमुक्ति और केवलिभुक्ति के विरोधी हैं, जब कि भाष्य इनका प्रतिपादक है। अतः सूत्रकार और भाष्यकार परस्पर भिन्न सम्प्रदायों के हैं। सूत्रकार दिगम्बर हैं, भाष्यकार श्वेताम्बर, इसलिए भाष्यकार के श्वेताम्बर होने से सूत्रकार श्वेताम्बर सिद्ध नहीं होते।

२. सूत्र और भाष्य में परस्पर विसंगतियाँ हैं, इससे भी सिद्ध होता है कि सूत्रकार और भाष्यकार भिन्न-भिन्न व्यक्ति हैं।

३. तत्त्वार्थसूत्र की सर्वार्थसिद्धि टीका में न तो भाष्यसम्मत तत्त्वनिरूपण मिलता है, न भाष्यगत दिगम्बरमत-विरोधी सिद्धान्तों का निरसन है, न भाष्य के अंत में निबद्ध बत्तीस श्लोक ग्रहण किये गये हैं। इसके विपरीत भाष्य में सर्वार्थसिद्धिसम्मत तत्त्वनिरूपण है तथा सर्वार्थसिद्धिमान्य सूत्र उद्धृत किया गया है। इसके अतिरिक्त तत्त्वार्थाधिगमभाष्य की शैली सर्वार्थसिद्धि की अपेक्षा अर्वाचीन है तथा अर्थविस्तार भी सर्वार्थसिद्धि की अपेक्षा अधिक है। इन तथ्यों से सिद्ध होता है कि तत्त्वार्थसूत्र की रचना पहले हुई थी और भाष्य की उसके बाद। इस प्रकार सूत्रकार और भाष्यकार में कालभेद होने से वे भिन्न-भिन्न व्यक्ति हैं। अतः भाष्यकार के श्वेताम्बर होने से सूत्रकार श्वेताम्बर सिद्ध नहीं होते।

४. श्वेताम्बराचार्य रत्नसिंह सूरि ने तत्त्वार्थाधिगमसूत्र पर टिप्पण लिखे हैं। उनमें भाष्यमान्य सूत्रपाठ की अपेक्षा कुछ अधिक सूत्रों का उल्लेख है, जो दिगम्बरमान्य सूत्रपाठ से मिलते हैं। इससे सिद्ध होता है कि तत्त्वार्थभाष्य लिखे जाने से पूर्व तत्त्वार्थसूत्र का एक ऐसा पाठ उपस्थित था, जिसकी दिगम्बरमान्य सूत्रपाठ से संगति थी। इससे भी सूत्रकार और भाष्यकार में कालभेद और उससे उनका भिन्न-भिन्न व्यक्ति होना सिद्ध होता है।

५. भाष्य के पूर्व भी श्वेताम्बराचार्यों द्वारा तत्त्वार्थसूत्र पर टीकाएँ लिखी गई थीं। इसी प्रकार सर्वार्थसिद्धि से पहले भी दिगम्बराचार्यों द्वारा तत्त्वार्थसूत्र पर टीका

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

लिखे जाने के प्रमाण उपलब्ध हैं। इससे भी सूत्रकार और भाष्यकार में कालभेद और उसके द्वारा उनका व्यक्तिभेद साबित होता है।

६. 'तत्त्वार्थ' में कोई भी सूत्र दिगम्बरपरम्परा के विरुद्ध नहीं है, जब कि श्वेताम्बरपरम्परा के विरुद्ध अनेक सूत्र हैं।

७. 'तत्त्वार्थ' के सूत्रों की रचना षट्खण्डागम, समयसार, पंचास्तिकाय, नियमसार प्रवचनसार, मूलाचार आदि दिगम्बरग्रन्थों के आधार पर हुई है।

८. तत्त्वार्थसूत्र के कर्त्ता दिगम्बर गृध्रपिच्छाचार्य हैं और भाष्य के कर्त्ता श्वेताम्बर उमास्वाति।

इन प्रमाणों से सिद्ध है कि तत्त्वार्थसूत्र दिगम्बरपरम्परा का ग्रन्थ है, श्वेताम्बरपरम्परा का नहीं।

उसमें यापनीयों को मान्य सवस्त्रमुक्ति, स्त्रीमुक्ति आदि के विरोधी सूत्र हैं तथा उसकी रचना यापनीयसम्प्रदाय की उत्पत्ति (पंचम शती ई० के आरंभ) से पूर्व (द्वितीय शती ई० में) हुई थी, इससे सिद्ध होता है कि वह यापनीयमत का भी ग्रन्थ नहीं है।

और उत्तरभारतीय-सचेलाचेल-निर्ग्रन्थ-सम्प्रदाय नाम का कोई सम्प्रदाय ही नहीं था, इसलिए तत्त्वार्थसूत्र का उक्त सम्प्रदाय का ग्रन्थ होना सर्वथा असंभव है।

सप्तदश अध्याय

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

सप्तदश अध्याय

तिलोयपण्णत्ती

प्रथम प्रकरण

तिलोयपण्णत्ती के दिगम्बरग्रन्थ होने के प्रमाण

क

रचनाकाल : ईसा की द्वितीय शती का उत्तरार्ध

'**आचार्य कुन्दकुन्द का समय**' नामक दशम अध्याय के प्रथम प्रकरण में तिलोयपण्णत्ती के रचनाकाल का निर्धारण किया गया है। अनेक प्रमाणों के आधार पर उसके कर्त्ता आचार्य यतिवृषभ का समय ईसा की द्वितीय शताब्दी का उत्तरार्ध निश्चित होता है।

आचार्य यतिवृषभ के सम्प्रदाय पर प्रकाश डालते हुए सिद्धान्ताचार्य पं० कैलाशचन्द्र जी शास्त्री लिखते हैं—"जहाँ तक चूर्णिसूत्रकार आचार्य यतिवृषभ के आम्नाय का सम्बन्ध है, उसमें न तो कोई मतभेद है और न उसके लिए कोई स्थान ही है, क्योंकि उनकी त्रिलोकप्रज्ञप्ति (तिलोयपण्णत्ती) में दी गई आचार्यपरम्परा से ही यह स्पष्ट है कि वे दिगम्बर आम्नाय के आचार्य थे।" (क.पा./भा.१/प्रस्ता./पृ. ६४)।

ख

यापनीयग्रन्थ मानने के पक्ष में प्रस्तुत हेतु

किन्तु **जैन धर्म का यापनीय सम्प्रदाय** ग्रन्थ के मान्य लेखक डॉ० सागरमल जी जैन ने तिलोयपण्णत्ती के विषय में भी एक नयी उद्भावना की है। वे अपने उक्त ग्रन्थ में लिखते हैं कि तिलोयपण्णत्ती दिगम्बरपरम्परा का ग्रन्थ नहीं है, बल्कि यापनीयपरम्परा का है। इसके समर्थन में उन्होंने निम्नलिखित हेतु प्रस्तुत किये हैं—

१. कसायपाहुडचूर्णि प्राचीन स्तर का ग्रन्थ है और विषयवस्तु एवं शैली की दृष्टि से अर्धमागधी आगमों और आगमिक व्याख्याओं के निकट है तथा शौरसेनी में

रचित है, अतः यापनीयपरम्परा का ग्रन्थ है, फलस्वरूप उसके लेखक यतिवृषभ भी यापनीय हैं। (पृ. १११)।

२. भाष्य और चूर्णि लिखने की परम्परा श्वेताम्बरों में ही रही है, दिगम्बरों में न तो कोई भाष्य लिखा गया और न कोई चूर्णि ही। श्वेताम्बरों और यापनीयों में आगमिक ज्ञान का पर्याप्त आदान-प्रदान रहा है। अतः यतिवृषभ के चूर्णिसूत्र यापनीय-परम्परा के ही होंगे। (पृ. ११४)।

३. यदि यतिवृषभ, आर्यमंक्षु और नागहस्ती के परम्परा-शिष्य भी हों, तो भी वे बोटिक (यापनीय) ही होंगे, क्योंकि उत्तरभारतीय-अविभक्त-निर्ग्रन्थ-परम्परा के आर्यमंक्षु और नागहस्ती का सम्बन्ध बोटिकों (यापनीयों) से ही हो सकता है, मूलसंघीय दक्षिणभारतीय कुन्दकुन्द की दिगम्बरपरम्परा से नहीं। (पृ. ११४)।

४. यापनीय शिवार्य ने भगवती-आराधना में **सर्वगुप्तगणी** का अपने गुरु के रूप में उल्लेख किया है। यतिवृषभ ने भी तिलोयपण्णत्ती में **सर्वनन्दी** को उद्धृत किया है। संभवतः ये दोनों एक ही व्यक्ति हों। इससे यही संभावना लगती है कि यापनीय शिवार्य के गुरु होने से सर्वनन्दी यापनीय थे, अतः उन्हें उद्धृत करनेवाले यतिवृषभ भी यापनीय होंगे। (पृ. ११४)।

५. यतिवृषभ के नाम के आदि में जो **यति** विरुद है, वह उनके यापनीय होने की सूचना देता है, क्योंकि नाम के पूर्व 'यति' शब्द के प्रयोग की प्रथा श्वेताम्बरों और यापनीयों में ही प्रचलित रही है, जैसे **यतिग्रामाग्रणी शाकटायन**। (पृ. ११४)।

६. "यतिवृषभ के चूर्णिसूत्रों में न तो स्त्रीमुक्ति का निषेध है और न केवलिभुक्ति का। अतः उन्हें यापनीयपरम्परा से सम्बद्ध मानने में कोई बाधा नहीं आती।" (पृ. ११५)।

७. भगवती-आराधना की '**अहिमारएण णिवदिम्मि**' गाथा (२०६९) में कहा गया है कि उपसर्ग आने पर **गणी** ने शस्त्र मारकर आत्महत्या कर ली। अपराजित सूरि ने 'गणी' शब्द का अर्थ यतिवृषभ किया है। और शिवार्य तथा अपराजित यापनीय थे। अतः संभावना है कि उनके द्वारा उल्लिखित यतिवृषभ भी यापनीय रहे होंगे। (पृ. ११५)।

८. उपर्युक्त उल्लेखानुसार यतिवृषभ की मृत्यु उत्तरभारत के **श्रावस्ती** नगर में हुई थी। उत्तरभारत बोटिकों या यापनीयों का केन्द्र था। अतः यतिवृषभ यापनीय आचार्य थे। (पृ. ११५)।

९. तिलोयपण्णत्ती में आगमों के विच्छेद का जो क्रम दिया है, वह यापनीयपरम्परा के विरुद्ध है, उसे प्रक्षिप्त मानना होगा। (पृ. ११५-११६, १२०)।

सप्तदश अध्याय

तिलोयपण्णत्ती

प्रथम प्रकरण

तिलोयपण्णत्ती के दिगम्बरग्रन्थ होने के प्रमाण

क

रचनाकाल : ईसा की द्वितीय शती का उत्तरार्ध

'**आचार्य कुन्दकुन्द का समय**' नामक दशम अध्याय के प्रथम प्रकरण में तिलोयपण्णत्ती के रचनाकाल का निर्धारण किया गया है। अनेक प्रमाणों के आधार पर उसके कर्त्ता आचार्य यतिवृषभ का समय ईसा की द्वितीय शताब्दी का उत्तरार्ध निश्चित होता है।

आचार्य यतिवृषभ के सम्प्रदाय पर प्रकाश डालते हुए सिद्धान्ताचार्य पं० कैलाशचन्द्र जी शास्त्री लिखते हैं—"जहाँ तक चूर्णिसूत्रकार आचार्य यतिवृषभ के आम्नाय का सम्बन्ध है, उसमें न तो कोई मतभेद है और न उसके लिए कोई स्थान ही है, क्योंकि उनकी त्रिलोकप्रज्ञप्ति (तिलोयपण्णत्ती) में दी गई आचार्यपरम्परा से ही यह स्पष्ट है कि वे दिगम्बर आम्नाय के आचार्य थे।" (क.पा./भा.१/प्रस्ता./पृ. ६४)।

ख

यापनीयग्रन्थ मानने के पक्ष में प्रस्तुत हेतु

किन्तु **जैन धर्म का यापनीय सम्प्रदाय** ग्रन्थ के मान्य लेखक डॉ० सागरमल जी जैन ने तिलोयपण्णत्ती के विषय में भी एक नयी उद्भावना की है। वे अपने उक्त ग्रन्थ में लिखते हैं कि तिलोयपण्णत्ती दिगम्बरपरम्परा का ग्रन्थ नहीं है, बल्कि यापनीयपरम्परा का है। इसके समर्थन में उन्होंने निम्नलिखित हेतु प्रस्तुत किये हैं—

१. कसायपाहुडचूर्णि प्राचीन स्तर का ग्रन्थ है और विषयवस्तु एवं शैली की दृष्टि से अर्धमागधी आगमों और आगमिक व्याख्याओं के निकट है तथा शौरसेनी में

ग

सभी हेतु असत्य

ये सभी हेतु यतिवृषभ को यापनीय सिद्ध करने के लिए प्रस्तुत किये गये हैं, और ऐसा करके यह निष्कर्ष निकालने की चेष्टा की गई है कि चूँकि यतिवृषभ यापनीय हैं, इसलिए उनके द्वारा रचित तिलोयपण्णत्ती भी यापनीयपरम्परा का ग्रन्थ है। किन्तु तिलोयपण्णत्ती में से एक भी उदाहरण ऐसा नहीं दिया गया है, जिससे यह सिद्ध हो कि उसमें यापनीय मान्यताओं का प्रतिपादन है, बल्कि यापनीयपक्षधर विद्वान् इस तथ्य से अच्छी तरह अवगत हैं कि ग्रन्थ में यापनीय-मान्यताओं के विरुद्ध कथन हैं। इसलिए उन्होंने उन्हें बिना किसी प्रमाण के प्रक्षिप्त मान लिया है और अपनी इच्छानुसार तिलोयपण्णत्ती को यापनीयमत का ग्रन्थ घोषित कर दिया।

ये सभी हेतु असत्य हैं, क्योंकि ग्रन्थ में उपलब्ध यापनीयमत-विरुद्ध सिद्धान्त इसे दिगम्बरग्रन्थ सिद्ध करते हैं। इसके अतिरिक्त ये सभी हेतु कल्पित मतों और शब्दों में कल्पित अर्थारोपण द्वारा परिकल्पित किये गये हैं। इसलिए ये स्वरूपतः भी असत्य हैं।

यहाँ सर्वप्रथम तिलोयपण्णत्ती में उपलब्ध यापनीयमत-विरुद्ध सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया जा रहा है। उनके साक्षात्कार से प्रथमदृष्टि में ही स्पष्ट हो जायेगा कि उपर्युक्त हेतु असत्य हैं। उसके बाद वे जिन कल्पित मतों और शब्दों में कल्पित अर्थारोपण द्वारा परिकल्पित किये गये हैं, उनका स्पष्टीकरण किया जायेगा।

घ

तिलोयपण्णत्ती में यापनीयमत-विरुद्ध सिद्धान्त

१

सवस्त्रमुक्तिनिषेध

तिलोयपण्णत्ती में कहा गया है कि देशव्रती श्रावक और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-शीलादि से परिपूर्ण स्त्रियाँ सौधर्मस्वर्ग से लेकर अच्युत (सोलहवें) स्वर्ग तक उत्पन्न होती हैं तथा जिनलिंगधारी अभव्य मुनि उपरिम ग्रैवेयक पर्यन्त एवं निर्ग्रन्थ भव्य साधु सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त जन्म लेते हैं। यथा—

सोहम्मादी-अच्चुदपरियंतं जंति देसवदजुत्ता।
चउविहदाणपयट्टा अकसाया पंचगुरुभत्ता॥ ८/५८१॥

इस गाथा में देशव्रती श्रावकों के सौधर्मस्वर्ग से लेकर अच्युतस्वर्ग पर्यन्त जाने का कथन है।

सम्मत्त-णाण-अज्जव-लज्जा-सीलादिएहि परिपुण्णा।
जायंते इत्थीओ जा अच्चुद-कप्प-परियंतं॥ ८/५८२॥

इसमें सम्यग्दर्शन, ज्ञान, आर्जव, लज्जा और शीलादिगुणों से परिपूर्ण स्त्रियों की अच्युत स्वर्ग तक उत्पत्ति बतलायी गयी है।

जिणलिंगधारिणो जे उक्किट्ठतवस्समेण संपुण्णा।
ते जायंति अभव्वा उवरिम-गेवेज्ज-परियंतं॥ ८/५८३॥

इस गाथा में कहा गया है कि **जिनलिंगधारी** अभव्य मुनि उपरिम ग्रैवेयक तक उत्पन्न हो सकते हैं।

परदो अच्चण-वद-तव-दंसण-णाण-चरण-संपण्णा।
णिग्गंथा जायंते भव्वा सव्वट्ठसिद्धिपरियंतं॥ ८/५८४॥

यह गाथा बतलाती है कि **निर्ग्रन्थ भव्य मुनि** सर्वार्थसिद्धि तक के देव बन सकते हैं।

इन गाथाओं से तिलोयपण्णत्ती का यह मत स्पष्ट हो जाता है कि चूँकि श्रावक और स्त्रियाँ सवस्त्र होते हैं, अतः अपने उत्कृष्ट धर्माचरण से भी वे अधिक से अधिक अच्युत स्वर्ग तक के देव का पद प्राप्त कर सकते हैं, उससे ऊपर नहीं जा सकते। किन्तु जिनलिंगधारी मुनि निर्वस्त्र होते हैं, इसलिए वे सर्वार्थसिद्धि तक के देव बन सकते हैं और अपने चरमभव में उन्हें मुक्ति प्राप्त हो सकती है। इस तरह सिद्ध है कि तिलोयपण्णत्ती में एकमात्र जिनलिंग या निर्ग्रन्थ-लिंग को ही मोक्ष का साधक माना गया है, सवस्त्रलिंग को स्थविरकल्प या आपवादिकलिंग के रूप में भी मुक्ति का मार्ग स्वीकार नहीं किया गया है।

मूलगुण सवस्त्रमुक्ति के विरोधी—तिलोयपण्णत्ती की निम्नलिखित गाथा में मूलगुण और उत्तरगुण के धारी मुनियों को ही महाऋद्धिधारी देवों की आयु का बन्धक बतलाया गया है—

उत्तरमूलगुणेसुं समिदिसुवदे सज्झाणजोगेसुं।
णिच्चं पमादरहिदां धंति महद्धिग-सुराउं॥ ८/५७५॥

मुनियों के मूलगुण २८ होते हैं, जिनमें आचेलक्य (नग्नत्व) पहला मूलगुण है। मूल का अर्थ है आधार या बुनियाद। अतः 'मूल' शब्द यह द्योतित करता है

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

कि नग्नत्व मोक्ष साधना की आधारशिला है। उसके होने पर ही उत्तरगुणों का विकास संभव है। उसके अभाव में मोक्ष के लिए आवश्यक त्रिगुप्ति, दशधर्म, द्वादशानुप्रेक्षा, तप, ध्यान आदि उत्तरगुणों का विकास नहीं हो सकता। इस तरह २८ गुणों के साथ 'मूल' विशेषण लगाया जाना सवस्त्रमुक्ति का निषेध सूचित करता है।

मुनि के मूलगुणों की किञ्चित् झलक **तिलोयपण्णत्ती** की निम्न गाथाओं में प्रस्तुत की गई है। कल्की का मन्त्री दिगम्बर मुनि का स्वरूप बतलाते हुए कहता है—

सचिवा चवंति सामिय सयल-अहिंसावदाण आधारो।
संतो विमोक्कसंगो तणुट्ठाण-कारणेण मुणी॥ ४ / १५४५॥

परघरदुवारएसुं मज्झण्हे कायदरिसणं किच्चा।
पासुयमसणं भुंजदि पाणिपुडे विग्घपरिहीणं॥ ४ / १५४६॥

अनुवाद—"मंत्री कल्कि से कहता है—स्वामी! वह मुनि सम्पूर्ण अहिंसाव्रतों का धारी है, समस्त परिग्रह से मुक्त है, शरीर की स्थिति के लिए वह दूसरों के घर के द्वार पर जाता है और शरीर को दिखाकर, मध्याह्नकाल में पाणिपात्र में अन्तरायरहित प्रासुक आहार ग्रहण करता है।"

सम्पूर्ण तिलोयपण्णत्ती में मुनि के इस निर्ग्रन्थ, जिनलिंग का और कोई विकल्प अर्थात् वस्त्रपात्रसहित लिंग कहीं दृष्टिगोचर नहीं होता। यह तिलोयपण्णत्ती में सवस्त्रमुक्ति-निषेध का प्रबल प्रमाण है।

मूलगुणों का सर्वप्रथम उल्लेख आचार्य कुन्दकुन्द के प्रवचनसार (३/८-९) में है। तिलोयपण्णत्तिकार ने उसी के आधार पर उनका कथन किया है। इससे प्रकट होता है कि वे कुन्दकुन्द की परम्परा के अनुगामी हैं।

२
स्त्रीमुक्तिनिषेध

पूर्व में तिलोयपण्णत्ती की '**सम्मत्त-णाण-अज्जव**' इत्यादि गाथा (८/५८२) उद्धृत की गयी है। उसमें बतलाया गया है कि सम्यक्त्व, ज्ञान, आर्जव, लज्जा तथा शीलादिगुणों से परिपूर्ण स्त्रियाँ अच्युत स्वर्ग तक देवरूप में जन्म लेती हैं। इसके बाद की पूर्वोद्धृत गाथाओं में यह भी बतलाया गया है कि अच्युत स्वर्ग से ऊपर के स्वर्गों में **जिनलिंगधारी** (**नग्न**) मुनि ही देवरूप में उत्पन्न हो सकते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि स्त्रियों में अच्युत स्वर्ग से ऊपर जाने की योग्यता नहीं होती। यह स्त्रीमुक्ति के निषेध का प्रमाण है।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in